जैसे थे वैसे चले आये
बांग्ला हिंदुओं पर हुई इस्लामिक क्रूरता की कहानियाँ
विनायक भट् | रोहित चक्रतीर्थ | गीर्वाणी | वृषांक भट्

अयोध्या

4

जैसे थे वैसे चले आये

जैसे थे वैसे चले आये

बांग्ला हिंदुओं पर हुई इस्लामिक क्रूरता की कहानियाँ

मूलभाषा–कन्नड़

विनायक भट्। रोहित चक्रतीर्थ। गीर्वाणी। वृषांक भट्

हिंदी में अनुवाद

स्वर्ण ज्योति। शांतला प्रकाश

अयोध्या

नं. 877, तीसरा माला, पहला ई मुख्य रास्ता

गिरिनगर, बेंगलूरू 560085

JAISE THE VAISE CHALE AAYE

Stories Of Jihad On Bangla Hindus And Their Migration

A book by : **Vinayaka Bhatta Muroor, Rohith Chakrathirtha Geervani, Vrushanka Bhat Nivane**

Translated by: **Swarna Jyothi, Shantala Prakash**

Published by: **Ayodhya**, # 877, 3rd floor, 1st E Main Road, Girinagar, Bengaluru-560085. Mobile: 9620916996
E-mail: ayodhyapublications@gmail.com

First Edition : 2020 • Paper : 70 GSM Book Print

Size : Demy 1/8 • Pages : 96 • Price : ₹ 150-00

Cover Photo : **Vinayaka Bhatta**

Coverpage- Innerpage Design: **Sonu**

RASHTROTTHANA MUDRANALAYA

No.8 & 8/1, Sathyapramoda Theertha Building, 3rd Main Road, 9th Cross, Chamarajpet, Bengaluru - 560 018

अनुक्रम

प्रस्तावना

उत्तर प्रदेश में नागरिकता संशोधन अधिनियम का विरोध करते हुए एक मुसलमान नेता ने ऐसी घोशणा की कि, " दुनिया के सभी मुसलमान लोग मेरे भाई हैं सिर्फ मुसलमान ही नहीं दुनिया के सब लोग मेरे भाई लगते हैं। मैं वसुधैव कुटुम्बकम् को बहुत मानता हूं। "सीमाओं की जरूरत नहीं थी। सीमा की रक्षा करने वाले फौजियों की भी जरूरत नहीं थी। नागरिकता का सवाल ही नहीं था, मुझे तो कुछ भी नहीं चाहिए"।

समझ में नहीं आता है कि यह गलत है कि सही। देश के सुशिक्षित नेताओं ने, देश की आजादी के समय में अपने विचारों के आधार पर, धर्म के आधार पर, देश को तीन भाग में विभाजित किया। उन नेताओं में बहुत से लोग वकील थे। उन को लोगों में भावनाओं से अधिक उनके अपने विचार ही मुख्य थे। टेबल पर फैला जो देश का नक्शा था, उसमें तीन रेखायें खींच दी गई, वह भी धर्म के आधार पर। लेकिन इन नेताओं को लोगों के मन की भावनाओं की कदर ही नहीं थी।

इन्सान यंत्र नहीं है, वह भावनाओं का और यादों का गोदाम है। उनका अस्तित्व दस पीढ़ियों की यादों से भरा हुआ है, जैसे

ये जमीन मेरी है, यह मेरी पाठशाला है, ये नदी मेरी है जहां मै तैरता था, आदि आदि, ऐसे बहुत सारे यादों की बुनियाद पर उनका अस्तित्व खड़ा होता है। जिंदगी सिर्फ एक सफर नहीं है, वह तो यादों के साथ एक हमसफर जैसी है। क्योंकि किसी की जमीन अपनी नहीं होती, किसी की पत्नी अपनी नहीं होती। हमारी जमीन से हमें एक लगाव रहता है, क्योंकि वही हमारा ठिकाना है। ऐसी जमीन और घर सब को छोड़ के जाना इतना आसान नहीं होता है।

समस्या तब शुरू हुई, जब लोग जिन के पास घर जमीन सब कुछ था वो रह गये और जिन के पास नहीं था उन्होंने देशांतर जाने का फैसला लिया। क्योंकि अपने ही घर का एक हिस्से में सब कुछ था।

बच्चों के लिए दूध, बड़ों के लिए पेट भर खाना, पर अगले हिस्से में सब कुछ खाली– खाली। अपने घर में बच्चे दूध के लिए और बड़े भूख से तडप रहे है। एक ही जमीन के दो टुकड़ों में कितना फर्क। एक हिस्से में बछड़े की कूद–फाँद और हरी–भरी जमीन। पर दूसरे एक हिस्सा में न बच्चों की किलकारी और न जमीन में हरियाली। एक टुकड़े में जिस दूध के लिए बच्चा रो रहा है उसी जमीन के एक और टुकड़े में लोग दूध को पत्थर की मूर्ति पर उडेंल रहे है। यह देखकर आंख का लाल होना जायज ही है। उसको लगता है कि इसने मेरा हिस्सा ले लिया है, इसको भगाना है। बस इतना काफी है लोगों को एक दूसरे के विरुद्ध करने में। ऐसी मनोदशा में जब लोग रहते है और अगर उनको अधिकार में रहने वालो का साथ भी मिल जाए तो हिंसा अपने आप भडक उठती है। इस हिंसा की वजह से ही तब का पूर्वी पाकिस्तान या आज का बांग्लादेश से, जो सब कुछ खो कर निराश्रित होकर 1970 इधर सिंधनूर में आये हैं। यह पुस्तक उन लोगों की यादों को दाखिल करता है।

इंसान को भडकाना बहुत आसान है। पहले उसकी खड़ी फसल को नाश करें तो वह अधूरा हो जाता है। अगर उसके गोदाम को लूट लिया जाए तो वह पूरी तरह से टूट जाएगा। पूजा स्थल या मंदिर या मीनार को तोड़ दिया जाए तो वह अकेलापन महसूस करता है, क्योंकि उसका अस्तित्व मिट जाता है। दुल्हन पत्नी का घूंघट उतारा जाए,उसके सामने ही उसकी प्यारी बेटी को नंगा कर मान भंग किया जाए तो, पत्नी पत्नी नहीं रहती और बेटी बेटी नहीं रहती। ऐसी स्थिति में में वह पूर्ण बंजारा और निराश्रित हो जाता है।

सभी लोग असभ्य नहीं है। पर यह सच है कि ऐसी चेतना रखने वाले असभ्य लोग भी है। राजकारण और अधर्म के रिश्ते से शैतान पैदा हुआ है।

उसका तो कोई धर्म वर्म नहीं है। सभी धर्म में ऐसा ही है। इसके साथ थोड़ी बुद्धि को मिला कर विवेक को खो दे तो विनाश का यंत्र तैयार होता है। ऐसे ही विनाश यंत्र के कारण अपनी जमीन अपना अस्तित्व सब कुछ खोकर पचास साल के बाद भी बंजर भूमि सिंधनूर में जिंदगी की खोज की तड़प का चित्रण है।

यह किताब कुछ ऐसे ही सच को उजागर करती है। 1971 का युद्ध पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच का युद्ध नहीं था, उर्दू और बंगाली भाशियों के बीच का भी नहीं था। बल्कि हिंदू और मुसलमान धर्म के बीच था। यह युद्ध धर्म के लिए नहीं लड़ा गया पर जायदाद के लिए लड़ा गया, धर्म के नाम पे जिसके पास जायदाद नहीं थी, उसे अमीर लोगों से छीन लिया गया। इसी कारण जो जमीन मुसलमानों के लिए निर्धारित की गई थी उस जमीन से हिन्दूओं को भगाया गया। ऐसे भागकर जो निराश्रित आए उन्होंने सिंधनूर में अपना अस्तित्व पुनः पाया। यह नागरिकता संशोधन अधिनियम उन लोगों को पुनः एक पहचान और अस्तित्व देने के लिये ही बनाया गया है न की किसी से कुछ छीनने के लिए।

मेरे जमाने के विश्व विद्यालय ने कुछ ज्ञान दिया या नहीं मालूम नहीं पर संस्कार को तो छीन लिया। देश की सीमा की रक्षा फौजी करता है, कानून सुव्यवस्था के लिए पुलिस है, रोजगार के लिए सरकार है। रहने के लिए अच्छी–सी जगह है जिंदगी ठीक ठाक चल रही है। ऐसे मौके पर "हवा भी तेरी, दिया भी तेरा चिराग को मत बुझाओ, समुंदर भी तेरा जहाज भी तेरा जिंदगी को मत डुबाओ" ऐसा कहना बहुत ही आसान है। लेकिन जब साल भर के पसीने की फसल एक ही रात में जल जाए तो, जिस भगवान को मानते है वह भगवान ही अगर बीच रास्ते में अनाथ कर जाए तो, खूबसूरत बेटी जो बड़ी हो गई है अंधेरे में गायब हो जाए तो, बहुत ही बुरी तरह से मार दी गई पत्नी के स्तन से रोता हुआ बच्चा दूध पीता जा रहा तो, पूरी रात बिना नींद के बैठ कर शून्य को देखते देखते जिसकी आंख लाल हो गई हो और सुबह की धूप के साथ आँखों के सामने झूलता हुआ खून से भरा हुआ स्तन दिखाई दे तो वह क्या सोच सकता है। कैसे लटकाया गया है? ऊपर से या नीचे से,? छू कर देखूँ क्या? किसका है यह? पत्नी का, बेटी का या फिर माँ का? अगर यह बेटी का हो तो भागने का ही मन होगा। बिना किसी को बता के भागने को मन होता है। लगाने को कोल्ड़ क्रीम नहीं, पीने के लिए पानी नहीं, खाने

के लिए फुड़ पैकेट नहीं, रहने के लिए न घर न ही सोने के लिए छत। अगर ये सब चाहिए तो एक सरहद चाहिए। नागरिकता, की पहचान चाहिए और आवश्यक कानून भी चाहिए।

यह बात सच है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। दुनिया में सभी,जाति, धर्म, के इंसान मेरे भाई है, इसलिए मै जात्यातीत (जाति विहीन) हूँ लेकिन मेरा घर, मेरा देश, मेरी भाशा, मेरा धर्म, मेरा भगवान, यकीनन ये सब सिर्फ मेरे हैं। मेरी पत्नी सिर्फ मेरी है मेरी बेटी सिर्फ मेरी संपत्ति है। किसी को भी उसे स्पर्श करने का हक नहीं है। चाहे वह मेरा बड़ा भाई हो या छोटा। संबंधों की नींव क्रिया में नहीं है प्रतिक्रिया में है। यह पुस्तक यही समझाती है।

– एस. एन. सेतुराम

प्रकाशक की बात

सभी के दुःखों का मूल इस्लामिक क्रूरता

इस्लाम धर्म से प्रभावित क्षेत्रो में अन्य विश्वास,परंपरा, संप्रदाय आदि किसी के लिए भी कोई स्थान नहीं होता है। कईयों को यह सुनने और विश्वास करने में कठिन लग सकता है परंतु सच यही है। अफगानिस्तान का, जहां केवल हिंदु ही बसते थे आज क्या हाल है? पाकिस्तान की स्थिति आज कैसी है? बांग्लादेश में हिंदु कैसे अल्प संख्या में आ गए? जम्मू काश्मीर में हिंदुओं को खदेडने वाली शक्ति कौन सी है? पश्चिम बंगाल और केरल राज्यों में मुसलमानों की जनसंख्या तेजी से बढ़ने के कारण वहां के अल्प संख्यक हिंदू और ईसाई जिस क्रूरता का अनुभव कर रहे हैं उनका पूरा विवरण दर्ज किया जा चुका है। केरल के ईसाई लव जिहाद का प्रतिकार कर ही रहे हैं। मंगलूरू और

कोड़गु जिले में भी जिहादी कृत्यों में मुसलमानों की भागीदारी स्पश्ट हो गई है। किसी भी राश्ट्र में यदि मुसलमानों की जनसंख्या राश्ट्र की जनसंख्या की सोलह प्रतिशत से भी अधिक हो जाए तो जिहाद अपना क्रूर रूप धारण कर लेता है ऐसा अब स्पश्ट दिखाई देने लगा है। काश्मीर की घाटी में हिंदुओं के साथ हुई क्रूरता इसका स्पश्ट उदाहरण है।

भारतीय संसद के दोनो सदनों में नागरिकता संशोधन अधिनियम के पारित होने के पश्चात देश भर के माओवादी और जिहादी संगठनो ने प्रतिकार के रूप में सार्वजनिक जान– माल की हानि की और अशांति का माहौल ही फैलाया है। पाक–बांग्ला–अफगानिस्तान में बसे अल्प संख्यक हिंदु, जैन, बौद्ध, पारसी, सिख तथा ईसाइयों को नागरिकता देने के विरोधी हैं ये सभी संगठन। इसी कारण मुस्लिम राश्ट्रों में वहाँ के अल्प संख्यकों की पीड़ा के अनुभवों को जानने की जिज्ञासा हुई। कर्नाटक के रायचूर जिले के सिंधनूर में बांग्लादेश से आये हिंदु शरणार्थियों के लिए पुनर्वास की व्यवस्था की गई है। वहां बसे हिंदुओं से बातचीत कर उनके दुःख– दर्द को जग जाहिर करने का प्रयास ही है यह पुस्तक।

इस कैंप में बसे हमारे बंधु–मित्रों की व्यथा–कथा पढ़ने से कभी–कभी मन में एकरसता का भाव उठने की सँभावना है क्योंकि सभी के दुःखों का मूल कारण इस्लामिक क्रूरता ही है।

1

प्रिय बतख

पश्चिम बंगाल के पूर्वी भाग में कंधे से कंधा मिला कर बसा है बांगलादेश। उसके पश्चिम भाग में बसा है एक छोटा सा राज्य कुल्ना . उसमें है कुल्ना जिला, बोटियाघटा तालुक्क, मांड़बांगा गाँव।

सुंदर बन के जंगल से 20–30 मैल की दूरी पर बसे होने के बावजूद यहाँ की हवा, वातावरण और भौगोलिक लक्षण सभी सुंदरबन की भाँति ही है। प्रत्येक घर में कम से कम 10 से 20 एकड़ की उपजाऊ भूमि है ही। चौबिसो घंटे पानी से भरे हुए खेत। उसमें शान से लहलहाती खड़ी फसल। घर से लगे बाग में सुपारी, नारियल, आम, केले और कटहल के फलदार पेड़ और प्रत्येक घर में ही पानी से लबालब एक छोटा–सा तालाब। सांझ

ढले तालाब में मछली पकडने को बैठे बुजुर्गों की आरामदायक मुद्रा और अपनी केशराशी को उन्मुक्त हवा में लहरा कर खिलखिलाकर हंसती हुई चंचल सुकोमल सुंदर युवतियों का समूह।

उनके घरों का कहना ही क्या। हालांकि वहां पानी का बहाव इतना तेज होता था कि घर की नींव तक हिल जाए पर मजाल की एक ईंट भी हिले। मूसलाधार बारिश के दिनों में भी मिट्टी से बनी उस दीवार से रत्ती भर भी मिट्टी घुलती नहीं थी। उस पर बांस से बनाई गई छाजन से छन कर आती हुई ध ूप की किरण से बनी शहतीर। घास से ही बने घर होने पर भी संस्कृति की छाप और कला की अभिव्यक्ति स्पश्ट करते हुए प्राचीन काल के घर अपनी पूरी षान से खड़े थे। इसे देख किसी कल्पना का सच होना ही लगता था।

उसी घर के आस –पास घर से ही मिलती –जुलती तीन –चार छोटी झोंपडियाँ बनी हुई थीं। वहां घर में काम करने वाले चाकरों को रहने की व्यवस्था की गई थी। घर से ही लगा हुआ कई बार घर से आधे के बराबर गोअल नाम की कोठरी और पास ही बतखों के लिए एक विशाल पक्षी घर। और साथ ही कस के बाँधी हुई लकड़ी की मजबूत नाव।

स्वर्ग से सुंदर उस गाँव को नजर लग गई। एक दिन दूर से कुछ चमकती रोशनी दीख पड़ी पास आने पर वे जलती मशालों में बदल गई ऐसा लग रहा था जैसे आग लगाने के लिए ही बढ़ी आ रही हों।

कुछ नावों में सवार कुछ लोग, काले वस्त्र पहन कर मुख पर कालिख और आँखों में काजल लगा कर हाथों में कटार, बंदूक, चाकू, तलवार थामें आये। आते ही टिड्डी दल की भांति फैल गए। देखते ही देखते उन लोगों ने घरों की बाड़ों को तोड़ डाला। बांस की छाजन को खींच डाला। वृद्धों को गले से खींच कर जमीन पर गिराया। घर की सुंदर युवतियों पर नजर पडते ही, चूहे के ऊपर मंडराते चील की तरह वे लोग उन युवतियों का पीछा करने लगे। घर के बुजुर्गों को घर से जितना हो सके उतना कुछ कीमती सामान इकठ्ठा कर ले जाने की हडबड़ी, घर की स्त्रियों को गहने, सोना, चाँदी को सहेजने की चिंता। छोटे बच्चे कुछ न समझकर माँ –पिता के पैरों के बीच लिपट कर बचने की कोशिश करते हुए। और बस षुरु हो गया गोलियों की धांय धांय और चीख– पुकार चीत्कार और रूदन और फिर मौन।

नीरव गाढ़ रात्री में अग्नि अपनी जीभ लपलपाती हुई चट चट की ध्वनि के साथ झोपड़ों को जलाती जा रही थी। राख बना कर खाक में मिलाती जा रही थी।

राक्षसों के हाथ घर परिवार के लोगों की मृत्यु देखने से पहले जितना हो सके उतना कीमती सामान कुछ एक भगवान की मूर्ति कुछ पैसे लेकर पिछवाड़े से भागते हुए लोग। उनमें असहाय वृंद्ध छोटे बच्चे, किशोर युवक युवतियाँ, मध्यम आयु के स्त्री पुरुश सभी थे। न आगे का सफर ज्ञात था न मंजिल की खबर थी बस भागना था दिशाहीन होकर।

आंकडो के अनुसार 26 मार्च 1971 को इस हत्याकांड़ का प्रारंभ हुआ। सरकार ने इसे "ऑपरेशन सर्चलाइट" नाम दिया। नौ महीने लंबे चले इस मरण यज्ञ में बांग्ला सेना और जमाते इस्लामी आदि मूलभूत संघटनो ने लगभग 30 लाख लोगो को गोली मारकर या गला काट कर मौत के घाट उतारा। 4 लाख बंगाली हिंदू महिलाएं बलात्कार की शिकार बनी। घरों में घुस कर तीन की हो या पचास आयु की एक ही है खींच कर ले जाना और सामूहिक अत्याचार करना और फिर हत्या कर फेंक देना, कई दिनों तक यह सिलसिला चलता रहा। गाँवों में गुप्त रूप से महिलाओं के वेश में आकर मुसलमान सारे आम बाजार से युवतियों को खींच कर ले जाते थे।

कुल्मा, जोशोर, परितप्त आदि गाँवों में किसी भी हिंदू परिवार के घर का दीवाार खटखटाए तो उस घर में मुसलमानों के बलात्कारिक अत्याचार से पीडित युवती, महिला का दिखाई देना तो तय ही होता था। गुप्त वेश में रह रही मोंजिला रॉय को अपने मामा की बहन बीना बिश्वास को इसी प्रकार से खोना पडा। इस कारण घर की महिलायें बाजार,आस–पास या घर के रिश्तेदारों के यहाँ हो रहे समारोह आदि में भी नहीं जा पाती थीं। लड़की नाम की सामान घर से बाहर दिखाई दे तो बस उसे चीर फाड़ के खाने वाले भूखे कुत्ते हमेशा तैयार बैठे रहते थे। किस समय किस युवती का क्या हाल होगा कह ही नहीं सकते थे।

सरकारी आँकड़ों के अनुसार इस हत्याकांड़ का प्रारंभ मार्च 1971 में हुआ परंतु ऐसी दुर्घटना का आरंभ इससे दो साल पहले ही हो चुका था। गाँव के घरों में बेनाम पत्र आने आरंभ हो गये थे। फलां तारीख को फलां जगह पर सभी कीमती सामान गहने जेवर पैसे आदि रख दो नहीं तो तुम्हारी स्थिति के तुम ही जिम्मेदार होंगे। इन धमकी भरे पत्रों को अनदेखा कर रहने वाले घर ही इन भयोत्पादकों के निशाना बने। उन भयोत्पादकों की आयु केवल पच्चीस से तीस के लगभग की थी। सभी के हाथों में बंदूके तलवार होते थे, काले पहनावे और मुख पर कालिख साथ ही आँखों में गहरा काजल लगाए वे सभी

राक्षसों जैसे ही लगते थे। हर समूह में दस से बारह लोग। अनेक घरों में वृद्ध, बच्चे,किशोर बिना किसी भी भेद–भाव के सभी को एक कतार में खड़ा कर गोली से भून दिया गया था। महिलाओं को चाहे वो किसी भी आयु की हो जबदस्ती खींच कर ले जाते। उनकी क्या हालत होती ये तो सर्वविदित था। अंत में उन्हें काट कर टुकड़े टुकड़े कर, आधा– अधूरा जला कर क्षत–विक्षत नग्न षरीर को कहीं फेंक देते। कई बार तो लाश इस स्थिति में मिलती कि यह पहचानना कठिन हो जाता कि यह लाश पुरुश की? है या स्त्री की।

उस समय कालीदासी गोल्दार की आयु केवल 15 वर्श थी। कालीदासी के परिवार वाले उस समय तो उन राक्षसों से किसी तरह बच कर आगे निकल तो गये। थोड़ी दूर जाने के पश्चात घर वालों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के पश्चात अचानक घर के बुजुर्ग को पक्षी घर में रखे बतखों की याद आई। घर के सदस्य की भाँति ही रह रहे उन बतखों को छोड़ कर आगे चले जाना उन्हें ठीक नहीं लगा तो उन्होंने सदस्यों को आगे जाने को कहा और स्वयं घर की तरफ लौटने लगे। इस समय तक घर छोड़ कर चार –पाँच दिन बीत गये थे। कट्टरपंथियों की नजर बचाकर यहाँ–वहाँ छुप कर कभी रूखा–सूखा खाकर तो कभी भूखे पेट रहकर जैसे –तैसे भारत की ओर जाने वाले रास्ते तक पहुँच गये थे और अब वहाँ से वापस लौट कर बतखों को कैसे लाया जाए? घर पहुँच भी जायें तो वहाँ बतखें जीवित होंगी इसका संदेह ही था। कट्टरपंथियों ने उन्हें छोड़ा होगा? काट कर भून कर चटखारे ले कर खा गये होंगे तो? कालीदसी के परिवार वालों को ये सारी षंकायें एक तरफ थी तो दूसरी तरफ घर की ओर लौटे बुजुर्ग वापस आयेंगे ही ऐसा विश्वास भी था। पर इस विश्वास के सहारे वहीं इंतजार करना सँभव भी नहीं था। इस समूह में बीस से भी अधिक लोग थे जिसमें अधिकतर महिलायें थी। इनकी रक्षा करना याने पत्थरों के बीच आईने को रख कर टूटने से बचाने के मानिंद था।। किस क्षण षत्रु की नजर उन पर पड़ेगी और उन्हें खींच ले जायेंगे कुछ कह नहीं सकते। खींच ले गये मतलब उन लड़कियों का भविश्य मौत के सिवा कुछ नहीं होगा यह निश्चित रूप से कह सकते थे। इसी कारण कालीदासी का परिवार बिना कहीं रूके आगे आगे बढता ही गया। जैसे–तैसे कर आखिरकार सरहद को पार कर भारत की धरती पर पाँव रख ही दिए।

हिंदुओ का समूह एक नाव में आ ही रहा था कि पीछे पीछे षत्रुओं का समूह एक और नाव में पीछा करते आ गया। उस नाव से चलाई गई गोलियों से

हिंदुओं के नाव में कई लोग घायल हुए कई लोगों की मौत हो गई। नाव और षव नदी में तैरने लगे। ऐसी खबरें उड़ने लगी। उस नाव पर कौन सवार थे? हमारे अपने या हमारे जैसे ही बच कर निकले कोई और हिंदु। हमारे अपने ही हैं तो अनिश्चितता और भय। माल्क्षा नाम के गाँव में काली बाड़ी (अर्थात काली माँ का मंदिर) में बंधे बैल को मुसलमानो ने अपहरण कर अपनी भूख मिटाई परंतु दस्त लगने कारण सभी ने अपनी जान गँवाई एक भी नहीं बचा ऐसी एक और खबर। जैसे भूखी बिल्ली को दो चम्मच दूध मिल जाए वैसे ही दुःखी मन को थोड़ा –सा सकून मिला इस खबर को सुनकर।

इस प्रकार संतोश, समाधान, दुःख, भय, विह्वलता, असुरक्षा आदि सभी भावनाओं झकझोर कर देने वाले समाचार एक के बाद एक इस परिवार को मिलते रहे। परंतु कालीदासी के परिवार वालों को बतखों को वापस लाने गये बुजुर्ग का कोई समाचार मिला ही नहीं।

आज कालीदासी 65 वर्श की हैं। भारत की सीमा के अंदर प्रवेश के समय उनकी आयु 15 वर्श की थी। साथ आई महिलाओं की केवल यादें ही षेश हैं। हाथ में फूटी कौड़ी भी नहीं। पहनी गई एक ही साड़ी में सात दिनों की दुर्लभ यात्रा को समाप्त कर भारत की धरती पर बसने वालों समूह में आज केवल कालीदासी ही जीवित बची हैं। पचास वर्श होने के पश्चात भी जब भी दुःख एवं पीड़ा से आँखें बंद होती हैं तब उनके मानस पटल में केवल दो चित्र उभरते हैं एक– षत्रुओं के हाथ से बच कर भागते समय कहीं लाशों के मध्य देखे गये वो मां और शिशु–, मृत माँ और माँ के सीने से चिपका माँ के स्तन से मुँह लगा कर दूध पीने का प्रयास करता हुआ शिशु

और दूसरा – तुम्हें तुम्हारे प्रिय बतखों को वापस लाकर दूंगा " कहकर सिर पर हाथ फेर कर सुबह सवेरे गये उसके नानू और रूधिर से लाल धरती पर आज भी हरे उनके कदमों के निशान।

2
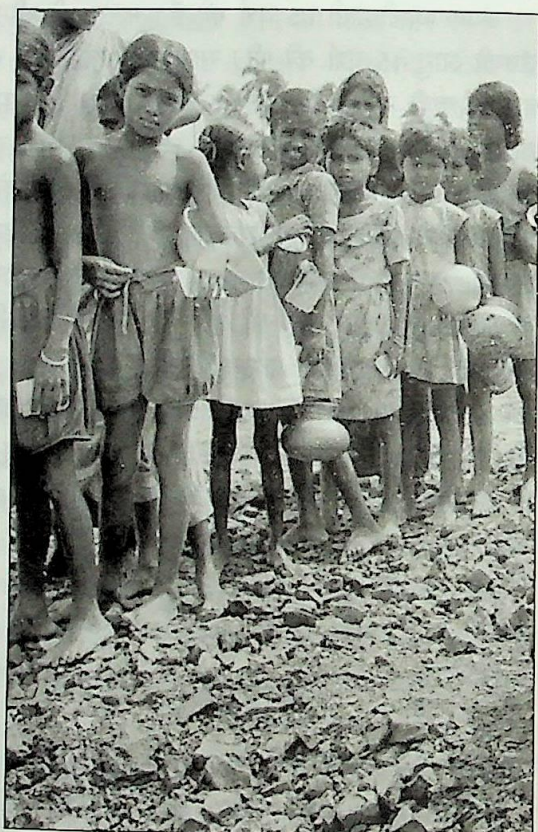
आज भी उन दिनों को याद करने से बुखार आता है

हे भगवान!!! पूछिये ही मत साहेब मैं उन दिनों को याद ही नहीं करना चाहता। जब स्वतंत्रता प्राप्त हुई तभी मेरे दूध के दांत टूटे थे। जब थोड़ी समझ आई तब समझ में आने लगा था कि हमारे आस–पास और समाज में कुछ समस्यायें हो रही है। माता–पिता भी बहुत आतंकित थे। जब मैं पाकिस्तान से भाग कर आया था तब मेरी उमर 22 साल की थी। 22 साल तक हम वहाँ कैसे थे? वहाँ से जीवित यहाँ तक आना ही एक बहुत बड़ा चमत्कार है, ऐसा दादाजी सुधीर विश्वास का कहना है।

मेरे दादाजी और पिताजी का स्वर्ण का उद्योग था। हम स्वर्ण आभूषण तैयार करने की दुकान चलाते थे। यह हमारा पारिवारिक उद्योग था। परंतु स्वतंत्रता के पश्चात पाकिस्तान में हिंदुओं को

कोई नहीं पूछता था। हमारी सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। सरकार केवल बातों में कहती थी कि सब की सुरक्षा की उत्तम व्यवस्था की जायेगी परंतु करती कुछ नहीं थी। मुझे याद है कि ऐसा मेरे पिताजी कहते थे।

●

वहाँ के मुसलमान हम हिंदुओं को बहुत ही नीची निगाहों से देखते थे। हमारी दुकान पर आये तो वे जितना दाम देते हमें उतना ही लेना पडता था। उनके विरुद्ध हम कुछ नहीं कह सकते थे। वे कुछ भी करें हमें खामोश ही रहना पडता था। उनका विरोध करने वालों को वे छोडते ही नहीं थे। हत्या, मार –काट, लूट–पाट, अत्याचार बहुत ही सामन्य सी बात थी। पुलिस थाने में जाने से भी हमारी कोई सुनने वाला नहीं था हमारी रिपोर्ट भी नहीं लिखी जाती थी।

ऐसी स्थिति में अंसार भाई नाम का एक व्यक्ति वहाँ अपना एक गैंग बना कर घूमा करता था। हिंदुओं को सताना और उन्हें लूटना ही उसका प्रमुख उद्योग था। हमारे गाँव भी आकर हम सभी को डराता धमकाता था। उसने एक हिंदु व्यक्ति को पकडकर उसकी लुंगी उतार कर उसे नग्न कर दिया फिर उसी लुंगी से उसके हाथ को पीछे बाँध कर सारे गाँव में घुमाया। इसी अंसारी ने पास के एक गाँव को आग लगा दी बिना कारण। इन सभी घटनाओं से हमारा आत्म बल और धैर्य दिन –पर दिन क्षीण होने लगा था। और इन्हीं दिनों बांग्लादेश में भी गडबड़ी प्रारंभ हो गई थी।

हम ने वहाँ अपने बसे–बसाए स्वर्ण उद्योग, दुकान, घर सभी को छोड़ कर भारत भाग जाने का निर्णय लिया। कुछ भी साथ ले जाना संभव ही नहीं था क्योंकि कुछ साथ रखना खतरे से खाली नहीं था। राह में लुटने की पूरी संभावना थी। यदि हाथ में कुछ न हो तो कुछ हद तक सुरक्षित रह सकते हैं, ऐसी स्थिति भी थी और यही विचार भी था। भारत की ओर निकलना और सुरक्षित पहुँचना एक बहुत बड़ा सवाल था। इसीलिए सुबह के समय यात्रा करना असंभव था। खाँसी भी आती तो हम रोक लेते थे क्योंकि थोड़ी सी भी आवाज से हमारी जान जा सकती थी। बच्चों को रोना आता तो हम उनका मुँह कस कर बंद कर देते थे। गाँव, नगर, लोग दिखे तो हम उनसे बच कर छुप कर दूर से ही निकल जाते। इस तरह छुपते –छुपाते जब हम भारत की सीमा पर पहुँचे तब हमारे पास केवल हमारे पहने हुए कपड़े और एक कंबल भर था।

आज भी उन दिनों की उन सभी बातों की याद आये तो मुझे बुखार चढ़ जाता है। आप उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। हम सब किस तरह उन संकटों से उबर कर बाहर निकले सोच कर अचरज होता है। अनिवार्यताएं हर कठिन परिस्थिति से जूझने का साहस देती हैं। हम वहाँ से सब छोड़ कर निकल आये हैं यही शाश्वत सत्य था। सालों की कमाई, जन्म स्थान, पले –बढे हुए वह घर सभी को छोड़ कर चले आये थे। दुबारा कुछ भी मिलने की आशा ही नहीं थी। षायद मोह का छूट जाना इसे ही कहते हैं। वहाँ से निकलने के अंत समय में हमें हमारी गुप्तता ही महत्वपूर्ण थी।

जब हम पश्चिम बंगाल में पहुँचे, तब हमें बिहार के कैंप में स्थानांतरित किया गया। जब हम वहाँ थे तब बांग्लादेश में हिंदुओं को एक कतार में खड़ा कर गोलियों से भून देने की खबर रेडियो में सुन कर रोंगटे खड़े हो गये। वहाँ से हम मध्यप्रदेश के माना कैंप में आये। हम वहाँ चार–पाँच साल रहे। वहाँ हमें जमीन देने का आश्वासन दिया गया। परंतु वितरण के लिए सरकार के द्वारा खरीदी गई जमीन कम पड़ गई। इसलिए हमें वहाँ से उत्तर प्रदेश के पीलीभीत शिविर भेजा गया। वहाँ भी कुछ लोगों को जमीन दी तो गई परंतु वहाँ भी सरकार के पास सबको देने के लिए जमीन की कमी हो गई। सरकार भी और कहाँ– कहाँ जमीन है इसी तलाश में थी। अंत में कर्नाटक के सिंधनूर में जमीन है। यह जानकारी मिली तब हमें यहाँ भेजा गया और हमें जमीन दी गई।

जब हम यहाँ आये तब यह स्थान जंगल के समान था। हमने इसे ही अपना देश बना लिया। जो हमारा था उसे खोकर जो हमारा नहीं था उसे अपना बना लिया। जन्म स्थान और घर को छोड़ देने की पीड़ा किसी को ना हो। भारत सरकार ने हमारे लिए जो व्यवस्था की है उसके कारण हम चौन से जीवन यापन कर रहे हैं। भारत सरकार को दिल से धन्यवाद कहते हैं।

3
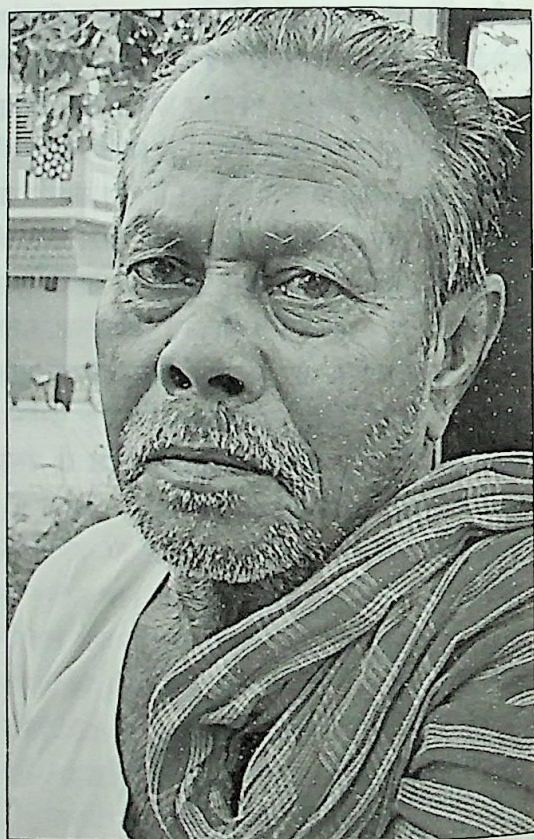
छिन्न–भिन्न हुआ परिवार

जन्म स्थान को छोड़ कर कहीं बहुत दूर आ कर बस गये हैं। यहां चौन की जिंदगी बसर कर रहे हैं। परंतु षरीर पर झुर्रियाँ पडने पर भी यादों पर झुर्रियाँ नहीं पड़ती। देश के विभाजन के भाँति ही परिवार भी विभाजित हो गया है। रूंधे गले से बोल उठे ज्ञान मंडल।

सामन्यतया षरणार्थी बन कर आए सभी परिवार एक ही स्थान पर बसे हैं परंतु कुछ परिवार भारत के भिन्न – भिन्न षरणार्थी शिविरों में बंट गये हैं। परंतु ज्ञानमंडल के परिवार की बात कुछ अलग ही है। ज्ञानमंडल और उनके एक भाई सिंधनूर में ही है। दोनों को भारत की नागरिकता प्राप्त है। उनके एक और भाई महाराज मंडल भी सिंधनूर में ही है परंतु उन्हें नागरिकता प्राप्त

नहीं हुई है। कुछ समय पूर्व मध्यप्रदेश के माना षरणार्थी शिविर से रवाना होने की स्थिति में महाराज मंडल और उनकी पत्नी परिवार समेत उत्तर प्रदेश के षरणार्थी शिविर मंउ पहुँचे। ज्ञानमंडल को सिंधनूर में आकर बसने के पश्चात कृशि योग्य भूमि प्राप्त हुई है, ऐसी जानकारी मिलने के पश्चात वे भी सिंधनूर आये। परंतु उनके पहुँचने से पूर्व ही यहां भूमि का वितरण समाप्त हो गया था। इस प्रकार उन्हें वहाँ भी जमीन नहीं मिली और यहाँ भी नहीं मिली।

इन्हीं के साथ पूर्वी पाकिस्तान से षरणार्थी बनकर आये इनके बड़े भाई लालचंद मंडल बांग्लादेश की स्थापना के बाद वहाँ जाकर बस गये हैं। आज भी वे और उनका परिवार बांग्लादेश में ही रह रहे हैं। इन्हीं दिनों ज्ञानमंडल भी अपने परिवार के साथ बांग्लादेश हो कर लौटे हैं। उनका कहना है कि वहाँ जो पहले उनका घर था वह अब नहीं है। उन लोगो ने एक नया घर तो बना लिया है पर उनकी पूरी जमीन नहीं मिली है। कुछ जमीन अभी मिलनी षेश है। इस तरह एक परिवार तीन दिशाओं में बांट गया है।

मुसलमानों के निरंतर अत्याचार, प्रताडना, और हिंसाचार से बचकर षरणार्थी बन कर भारत आये परिवार में से बंगला देश के निर्माण के पश्चात उनके बड़े भाई का वहाँ जाकर पुनः बसना वास्तव में बहुत ही साहस का कार्य है क्योंकि भयानक यादों को सीने में दबा कर पुनः उसी प्रदेश में जाकर बसने के लिए फौलादी जिगर चाहिए।

4

बांगाल में जिहाद 1970 में शुरू नहीं हुआ

गुरुचंद मंडल अब 45 साल के हैं। लंबा मुख, बड़े सिर पर सफेद बाल बड़े –बड़े कान, पिछके गाल, पतले–पतले हाथ और पैर, 5 फुट 10 इंच का बदन, चेहरे पर 85 शिशिर ऋतु ने झुर्रियों की लकीरें खींच दी हैं, लेकिन वह गहरी आँखें ऐसा लगता है कि भी उन आंखों से अभी आंसू ढुलक पडेंगे। जब गुरुचंद बंगाल छोड़ कर भारत आयें थे तब वह 10–12. साल के बच्चे नहीं थे। उनकी उम्र 35 साल थी।

गुरुचंद को बहुत अच्छे से उन दिनों की याद है। षरीर को बुढ़ापा आ गया है, पर उनका मन कंप्यूटर की भाँति उन दिनों की यादों को विस्तार से सहेज कर रखे हुए हैं। अगर किसी ने

प्यार से उनसे, "वह जमाना कैसा था? बोलो ना दादा जी" पूछ लिया तो गुरुचंद के यादों का पुलिंदा खुल जाता था। गुरुचंद कहते है "सब कहते हैं कि स्वतंत्रता के समय हमारा और उनका झगड़ा हुआ। वैसा कुछ नहीं है। वे लोग पहले से ही हमसे द्वेश करते थे। लेकिन स्वतंत्रता के समय में अधिक हो गया।" ऐसा कहते– कहते गुरुचंद यादों में खो जाते है। यह सबको मालूम ही है कि अखंड़ देश भारत को 1947 में तीन हिस्सों में विभाजित कर उन में से एक भाग को भारत नाम दिया गया। भारत की इस नई सीमा रेखा के इस तरफ और उस तरफ के दो टुकड़ों को पूर्वी और पश्चिमी पकिस्तान नाम दिया गया। जब स्वतंत्रता मिली तब पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दुओं की जनसंख्या, वहाँ की कुल जनसंख्या का 31% थी। सिर्फ 14 वर्श में वह 19% तक गिर गई। (तब तक पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश के नाम से आजाद देश हो गया था।) 2002 में में बांगलादेश में हिन्दुओं की जनसंख्या केवल 9% है अब तो सिर्फ 3 या 4% है। यह तो बड़ी दुःख की बात है। यही काफी है हमें उधर के हिन्दूओं की हालात को समझने के लिए। साथ ही यह भी पता चलता है कि पाकिस्तान से आजादी मिलने के बाद में भी बांगलादेश में हिन्दूओं की हालात में कोई सुधार नहीं हुआ। इस से हमें पता चलता है कि वहाँ जो कुछ भी हुआ वो सब धर्म के आधार पर ही हुआ। ये भी स्पश्ट होता है कि इन सब का कारण कट्टरता का अंश ही है। इसीलिए इसे कट्टरपंथी कह सकते है।

पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान के कुल संसद में पूर्वी पाकिस्तान के सदस्यों की संख्या ही अधिक थी। क्योंकि पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या 7 करोड़ और पश्चिमी की 4 करोड़। इसलिये सांसदो की संख्या भी उन्हीं की अधिक रही। प्रतिनिधियों का अनुपात 3:2 था। इस हिसाब से पूर्व पाकिस्तान को सचिव के स्थान अधिक मिलने की संभावना थी। पर ऐसा नहीं हुआ। पश्चिमी पाकिस्तान ने दबाव डालकर सब कुछ छीन लिया। ताकि मुख्य सचिव स्थान जैसे प्रधान मंत्री, अध्यक्ष, स्थानों को दबाव डाल के अपना लिया। देश के आय–व्यय में भी सिर्फ 35% पूर्वी पाकिस्तान को दिया गया। इससे भी ज्यादा जब बंगाल की खाड़ी में तूफान आया तब षायद ढ़ाई हजार लोग सब कुछ खो कर निराश्रित हुए और हजारो लोग मारे गये। इतना सब कुछ होने के बाद भी पश्चिमी पाकिस्तान सहायता के लिए नहीं आया। पश्चिमी पाकिस्तान का यह रवैया पूर्वी पाकिस्तान के लोगों को बहुत बुरा लगा। इसके अलावा जब पश्चिमी पाकिस्तान

ने उर्दू भाशा को राश्ट्र भाशा मानने पर दबाव डाला तब पूर्वी पाकिस्तान के लोग अपना आपा खो बैठे। यही एक मुख्य कारण था कि दोनों हिन्दू और मुसलमान पश्चिमी पाकिस्तान के विरुद्ध हो गये, क्योंकि वे दोनों बंगाली भाशा को मातृभाशा मान गये थे। तुरंत पाकिस्तान को समझ में आया कि अगर उसने भाशा का इस्तेमाल किया तो वे निश्चित रूप से पूर्व पाकिस्तान को खो देंगे, इसीलिए उन्होने धर्म के आधार पर हिन्दू और मुसलमानों को विभाजन करने का रास्ता अपना लिया। पश्चिमी पाकिस्तान से पठान, खान हजारो की संख्या में आये और इधर मुसलमानों का ब्रेन वॉष करने लगे। बंगाली भाशा बोलने वाले हिन्दुओं को भगाने के लिए उनको भडकाया। उन्होंने इस बात को उनके दिमाग में भर दिया कि अगर हिन्दूओं को भगा दिया जाए तो उनके देश में उनका ही राज होगा, और उन्होंने यह भी बताया कि हिन्दू लोग अस्पृश्य हैं इसीलिए उनको दूर रखने में ही भलाई है। वे काफिर हैं हमारा मुसलमानों का देश है। इस कारण हिंदु काफिर दूसरे दर्जे के हैं आदि आदि। उन लोगो ने इस कदर उनके दिल– दिमाग को प्रभावित किया कि पूर्वी पाकिस्तान के लोगो की धर्म प्रज्ञा जाग उठी और वे हिन्दूओं को सताने लगे।

जब बंगाल में लोग निर्भय होकर सोते थे तब इनका उपद्रव प्रारंभ होता था। धीरे धीरे हिन्दुओं की पशुशाला से एक एक गाय लापता होने लगी। जब ऐसे अनेक गायें गौ षाला से गायब होने लगीं तब लोगों को षक होने लगा। चोरी का मामला भी इधर उधर पकड़ा गया। वो चोर मुसलमान ही थे। और कई स्थानों पर गायों को केवल चुराते ही नहीं थे, बल्कि उनको मारकर षरीर के टुकड़ों को मंदिर के आँगन में डाल देते थे। इस विशय में अगर लोग थाने में रिपोर्ट लिखवाने जाते तो उनको ही कोई केस के बहाने अंदर डाल देते थे। इससे हिन्दुओं का थाना जाना भी मुश्किल हो गया।

नौकाली, कुश्टिया आदि षहरों में डकैती होने लगी। हाथ में बंदूक लेके षहरो में घूमने लगे। इन लोगों को बस रात का इंतजार रहता था। रात होते ही हिन्दूओं के घर से गाय, बछड़े बकरी, मुर्गी चोरी होने लगे। हिन्दुओं को बेशक मालूम था कि उनके आंगन में चोरी हो रही है, पर वे विरोध करने का हालत में नहीं थे। अगर उनक विरोध किया तो अगले दिन सुबह उनके घर के सामने सौ– दो सौ लूटेरे जमा हो जाते थे। घर की औरते का दरवाजा खोलकर बाहर जाने की संभावना ही नहीं थी। माधव बवाली नाम का एक हिन्दु

कुल्ना और दौलदपुर में बांस का कारखाना चलाता था। रातों – रात उसकी फैक्टरी को लुटेरों ने लूट कर जला दिया। आग की ज्वाला अपनी लाल जीभ को लपलपा कर आसमान छूँ रही थी। सिर्फ कारखाना ही नहीं उसके खेत को भी जलाया। निशिकांत नाम के एक जमीनदार के घर से दो बच्चों को खींच के लेके गये और उनको तुकडे कर के गाँव के बाहर तालाब में फेंक दिया। उसकी बेटी को काटने से पहले बलात्कार किया, यह सभी जान गए। वे दुश्ट लोगों को सिर्फ मारते ही नहीं थे, मारने के बाद उनके षरीर के टुकड़े करके गाँव के बाहर लटका देते थे, क्यों कि लोगों को भयभीत करना ही उनका मकसद था।

बंगालियों का नवरात्रि, दशहरा बहुत बड़ा त्योहार है। नवरात्री में देवी की बडी– बड़ी मूर्तियाँ बना कर नौ दिन पूजा के पश्चात षहर के बाहर तालाब या

नदी में विसर्जन करना उनका संप्रदाय था। ऐसे इन त्योहरों पर आस– पास के सात आठ गाँव के लोग इकठ्ठा होते थे।। 1969 में गुरुचंदर के गोनबंद गाँव में देवी की मूर्ती के विसर्जन के लिये लोग इकठ्ठे हुए थे। इतने में वहाँ रजाकों का दल दिखाई दिया। लगभग 2000 लोगों की बड़ी भीड़ थी। उन्होने लोगों को घेर लिया। लेकिन कुछ नहीं किया, पर जो लोग विसर्जन के लिए आये थे, उन्हें सभी तरफ से घेर लिया। बडों ने अपनी छोटे –छोटे बच्चों को अपने धोती, साडियों में छुपा लिया। जहाँ त्योहार का वातावरण था वह एकदम निशब्दता छा गई। षायद आस पास के गाँव के लोगों के साथ मिल के मनाई गई आखिरी नवरात्री थी। उसके बाद हिन्दु सामान्य दिनों में भी घर से बाहर आने के लिए डरने लगे। लडकियों को तो गृह बन्धन में रखा गया। उन्हें घर के चार दीवार के अन्दर ही रहना पडा। वे बाजार, या रिश्तेदारो के घर या कोई भी

पूजा या त्योहार में जाने का हक को ही खो बैठे थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि उनको पडोस में अपने सहेली के घर जाने की भी इजाजत नहीं थी।

1971 बरसात का मौसम था। घर छोड़ जाने के इलावा और कोई रास्ता नहीं था। गाँव में सभी ने पलायन करने का फैसला किया। उनके पास खुद के हाथ पैर और पेट को छोडकर ले जाने के लिए कुछ भी नहीं था। औरतों ने अपना गहने –जेवर, सोना चांदी जो भी था पुरुशों को दे दिया। पुरुशों ने उसे अपनी कमर में धोती के साथ बांध कर रखा था। पर उनको रात का इन्तजार करना ही था। वो भी अमावास की रात का। कोई भी किसी तरह का आवाज नहीं कर सकता था। सात आठ परिवार मिल के जाने से एक तरह की सुरक्षा का एहसास होता था। मुश्किल के समय दुःख – सुख कुछ भी हो सामना करने के लिए और भी लोग हमारे साथ है। यही एक समाधान था। वैसे ही एक अंधेरी रात में गुरुचन्द और उसका परिवार घर छोड़ चले। घर की औरतों को बहुत दुःख हुआ था, लेकिन जोर से रो भी नहीं पा रही थीं। कुछ भी आवाज नहीं औरतों ने अपने पायल को भी निकाल कर तेजी से जा रहीं थीं। चल तो दिए थे, मगर जाना कहाँ? सब के सामने यही एक सवाल था। खबर मिली थी कि भारत में निरश्रितों को आश्रय मिल रहा है, लेकिन कैसे जाने का? कहीं – कहीं मदद करने के लिए लोग तो मिलते है पर वो मदद की बदले में कुछ न कुछ अपेक्षा जरूर रखते। उनको तो देना ही पड़े गा। एक रास्ते से दूसरा रास्ता, गाँव जंगल सब को पार कर बढ़े जा रहे थे। वे सिर्फ रात में ही सफर कर सकते थे। दिन में जंगल में छुपाना पडता था। जिस प्रकार १०० उपनदियों के संगम से एक महा नदी बनती है उसी प्रकार कहीं– कहीं से आये हुए 5, 10, 20 परिवार मिलकर बोम्रा नाम की एक सीमा के गाँव पहुंच गए। लेकिन पुलिस वालों को यह खबर थी कि जो भारत देश जाना चाहते है वो जरूर इधर आएंगे, इसीलिए पुलीस की 3–4 टुकड़ी इनसे पहले ही पहुँच गई दो तीन दिन से, दिन रात एक कर चलकर वे थक गए थे, पर उनको देखते ही पुलिस कुत्तों की भाँति उन पर टूट पड़े। थकावट के कारण वे पुलिस का सामना नहीं कर सके। इसके अलावा बंगाल की बारीश, दिन में भी अंधेरा छा गया था। इतने में पुलिस ने बंदूक चलाना षुरू किया। चीख, पुकार, दौड़ भाग, किसीको भी यह जानने की आतुरता नहीं थी कि किसको गोली लगी। लोग भागने लगे, कई गिर गये उन पर निर्दयता से जूतों की मार

पड़ी, कई मर गए, जो मर गए पुलिस ने उनको काट कर फेंक दिया। कुरुक्षेत्र बन गया। फिर स्मशान में बदल गया। कुछ लोग पुलिस से बच कर भाग ही गये पीछे– पीछे देखते हुए सीमा पार कर भारत की सीमा में पहुँच ही गये। उन्हें सबसे पहले भारत की सीमा के अंदर मिला थाना – बशीरहाट पुलिस थाना। उनके लिए सीमा के अंदर पहला सुरक्षित पुलिस थाना।

जो लोग बचके भाग के आये थे उनको थाना अधिकारियों ने बिठा कर, षरीर पोंछने के लिए तौलिया और बदलने के लिए कपड़ा भी दिया। और पुलिस वालो ने बहुत प्यार से उनको समझाया कि यहाँ उनको कोई तकलीफ नहीं होगी और कोई लूटनेवाला भी नहीं है। इतना भरोसा देने के बावजूद भी वो लोग इतने डरे हुए थे कि उनका बदन डर के कारण थरथर कांप रहा था। उन लोगो में कुछ लोगों को बुखार था। उनको दवाखाना भेजकर दवाई दिलवाई। बच आये लोगों को थाने में बिठा कर गुलाब जामुन खिलाया। हफ्तों के बाद उनको मिला हुआ पहला मीठा था, और पहला भोजन भी। गुरुचंद कहते है कि ऐसा जामुन हम ने नहीं कभी खाया था और भविश्य में कभी नहीं खायेंगे!

5
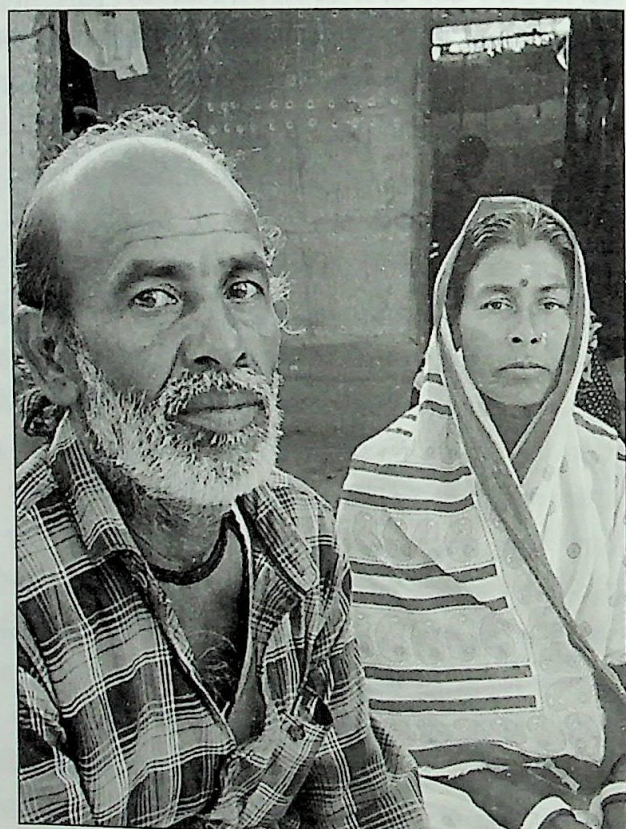
बच्चों के सिर काटने वाले क्रूर

करुणा जैसी भावना ही उनमें नहीं थी। हिंदुओं को किसी भी तरह का हक प्राप्त नहीं था। मुसलमानों के उपयोग कर छोड़े गए वस्तुओं को ही हमें उपयोग करना पडता था। हमारे ही परिवार से लडकियों को उठा कर ले जाते हुए हमने अपनी आँखों से देखा है। भारत में आने के बाद रहने को घर और स्थान न होने पर भी हम चौन से जी रहे हैं। आज तो आदरणीय प्रधान मंत्री मोदी जी और गृह मंत्री अमित षाह जी के द्वारा इस नागरिकता संशोधन अधिनियम पारित करने के पश्चात हम सभी की समस्याओं का अंत हो गया है। मेरी तो उम्र हो गई है लेकिन

मेरे पुत्र और पौत्र ही सही इस देश की प्रजा बन कर जीवन यापन करें यही मेरी आशा है कहते कहते परितोश मंडल और प्रमिला मंडल की आँखों से आँसू बहने लगे।

बांग्लादेश में जमीन घर सभी को छोड़, जान बची तो लाखों पाए सोच कर यहाँ भाग आए थे ये दोनों। लेकिन ये आरंभ में ही भाग नहीं आए। जितना हो सके जब तक हो सके वहीं रहने का प्रयास करते रहे। जन्म स्थान, जन्म भूमि छोड़ कर आने का मन नहीं बना पाए थे इस कारण भयभीत रहकर भी वहीं जीवन यापन करते रहे। परंतु घटने वाली हर घटना ने देश छोडने पर मजबूर कर ही दिया। आखिर कब तक? भय के छाँव में षांति कहाँ मिल सकती है भला?

परितोश मंडल जी के ससुर बांग्लादेश के एक पाठशाला में अध्यापक थे। मुसलमानों के कृत्यों का विरोध करने के कारण एक दिन उनके हाथों को पीछे की तरफ बाँध कर पाठशाला के मैदान में ही उन्हें खड़ा कर सबके सामने गोली मार दी गई। सभी के घर में मौत का साया मंडराता ही रहता था। बस हमारे ही घर में ऐसा नहीं होता है एक दिन सब ठीक हो जाएगा इस आशा के साथ हमने थोड़े और दिन गुजार दिए। एक और दिन परितोश मंडल के घर के पास की एक गली में 200 लोंगो को एक कतार में खड़ा कर दिया गया था। लोंगों की चीख–पुकार को सुन कर पत्नी प्रमिला मंडल ने वहीं पास ही छुप कर देखा। वहाँ कतार में खड़े सभी लोगो को मशीनगन से भून दिया गया।

इस दृश्य को देखकर प्रमिला मंडल के सीने की धडकन रुक –सी गई षरीर में कंपकपी फैल गई, रोंगटे खड़े हो गए। अब और यहाँ रहना मतलब जान से हाथ धोना ही होगा। वे तुरंत घर लौट आई। फिर सभी घर के सदस्य घर के पिछवाड़े बढ़ी हुई झाड़ियों में जा छुपे थे। रात होने के पश्चात डरते –डरते धीमें कदमों से सभी घर के अंदर आए। अंदर तो आए परंतु उस रात सभी की आँखों से नींद गायब हो गई थी। किसी ने भी पल भर के लिए भी आँख नहीं झपकी। न जाने किस क्षण कौन अंदर आ जाएगा सारी रात यही डर उन्हें सता रहा था।

उसके बाद उन लोगों ने रात के समय दिया जलाना ही छोड़ दिया। दिया जलाने से सब को पता चल जाएगा कि घर में लोग रहते हैं, उन्हें यही डर लगा रहता था। दिन के उजाले में भी काली रात सा ही उनका जीवन हो गया

था। ऐसे में दिया जलाने का भी कोई अर्थ भी नहीं था। किसी के गले से कौर भी नहीं उतरता था। मन में षांति न हो तो पेट की भूख पता ही नहीं चलती। खेत में खड़ी फसल की चोरी भी हो जाए तो हम कुछ नहीं कर सकते थे। क्योंकि हम अपने अस्तित्व को ही छुपा कर जी रहे थे।

इतनी जागरूकता का निर्वाह करने पर भी एक दिन रात को एक समूह इनके घर आ धमका था। रसोई के लिए जलाई गई आग का परिणाम था षायद कि घर में लोग बसते हैं, जानकारी बाहर पहुँच गई थी। लोग घर की तरफ आ रहे हैं, ऐसी जानकारी मिलते ही घर के सदस्य घर के पिछवाड़े से भाग निकले थे। परंतु चूल्हे पर पकता भोजन वैसा ही रखा रह गया था। घर में घुसे मुसलमानों ने पकते हुए भोजन को सारी रसोई में फैला दिया और अभी–अभी घर से भागे हैं, सोच घर के आस–पास बहुत देर तक छान– बीन करते रहे। परंतु हम सब उस समय तक बहुत दूर निकल आए थे। इस तरह उस दिन हमारा बचाव हो गया।

इस घर में कोई न कोई रहता जरूर है ऐसा उनको संदेह तो हो ही गया था इस कारण पुनः उनका आना निश्चित ही था। इस कारण इनके परिवार ने एक उपाय ढूँढ़ा वे लोग अधिकतर समय घर से बाहर ही रहने लगे। घर के पीछे एक नदी बहती थी नाव के सहारे उस नदी को पार कर, नाव को नदी में ही डुबो कर बाँध देते थे और फिर पास के जंगलों में छिप जाते थे। कई बार कई दिन और रातें उन्होंने उस जंगल में ही बिटाये थे। घर आना भी हो तो पहले डुबोकर रखी नाव को नदी से निकाल कर नदी पार करना पडता था।

इन सभी के बीच उनके गाँव में और पास के गाँव में चल रहे हिंसाचार के समाचार लगातार मिलते ही रहते थे। इनके गाँव में ही एक परिवार की हत्या करने के समय मुसलमानों ने बच्चों की गर्दन को काट, उनके माता–पिता के षव के पर ही उनको लिटा कर गए थे। उनमें दया– करूणा का कोई भाव ही नहीं था। मासूम फूल से नाजुक बच्चों की हत्या की जा रही थी। क्रूरता की कोई हद ही नहीं थी। उन लोगो ने एक घर में नवजात शिशु को नाल के साथ ही पकड़ कर फेंक दिया था। भयंकर भयावह स्थिति थी।

जीव भय से ही अनेक सावधानियाँ बरतते हुए जीवन को बचाए रखे हुए थे। परंतु किसी दूसरी जगह पर बसे हुए परितोश मंडल के ताऊ की लडकी

का और प्रमिला मंडल के भाई की लडकी का अपहरण मुसलमानों ने कर लिया था। उनका क्या हुआ? उनका बलात्कार हुआ या उनकी हत्या कर दी गई थी? या फिर उन्हें मुसलमान बनाकर उनसे षादी कर ली गई थी? कोई भी किसी भी प्रकार का समाचार इस परिवार के पास नहीं था। अपने ही परिवार की दो लड़कियों के अपहरण का समाचार सुन इनका भी धैर्य टूट गया था। इस देश में हमारे जान की खैर नहीं। बच भी गए तो षांति तो है ही नहीं। ऐसा निर्णय लिया गया।

अपनी दस बीघा जमीन को बेचने का विचार भी नहीं किया। क्योंकि जमीन को बेचकर पैसे कमाने के बजाए जान बचाना अधिक महत्वपूर्ण लगा। और तब भारत की ओर पलायन का निर्णय भी लिया। वे जहाँ थे वहाँ से नाव द्वारा भारत की सीमा तक पहुँचने के लिए दस घंटे की यात्रा करनी पडती थी। रात होते ही परिवार के सभी दस लोग एक नाव में चढ़ कर सुबह सवेरे भारत की सीमा तक पहुँचने से पहले ही सीमा के समीप ही कुछ और नावों को देखकर तुरंत किनारे पर ही उतर कर वहीं झाड़ियों में छुप गये और नदी किनारे चलने लगे। सीमा तक पहुँचने के लिए नदी को पार करना ही था। नाव भी नहीं थी। ऐसे समय जब कोई नहीं था, उस समय को देख कर गले तक पानी में डूब कर नदी पार की और भारत की सीमा में प्रवेश किया। इस समय तक उनके परिवार के कुछ लोग कर्नाटक के सिंधनूर में रह रहे हैं ऐसी जानकारी मिल चुकी थी अतः वे सीधे यहीं आ गए। पर उस समय तक यहां जमीन का वितरण तथा दूसरी औपचारिकतायें पूरी की जा चुकी थी।

इस तरह परितोश मंडल और प्रमिला मंडल को नागरिकता नहीं मिली। सरकार के द्वारा दी जाने वाली पाँच एकड़ जमीन भी नहीं मिली। उस समय से मजदूरी कर के ही जीवन यापन कर रहे हैं। आरंभ में उन्हें एक दिन की मजदूरी में केवल पाँच रुपए मिलते थे। उस समय महिलाओं को और भी कम मजदूरी मिलती थी। प्रमिला मंडल और उनके साथ की महिलाओं को दिन भर मजदूरी करने पर भी बीस पैसे से लेकर तीन रुपए तक ही मजदूरी में मिलते थे। मजदूरी कर जीवनयापन करने पर भी यहाँ चौन की जिंदगी थी। भय विहीन वातावरण था। न जाने कब कौन घुस कर मार डालेगा ऐसा डर नहीं था। जो कमाते थे वह अपना ही था यही सबसे बड़ी उपलब्धि थी।

इस दंपति को तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। सभी की षादी होकर पोते पोतियाँ भी हैं। 17 लोगों से मिला–जुला परिवार है। परितोश मंडल तथा प्रमिला मंडल की उम्र हो गई है। हमारे दिन तो किसी तरह गुजर गए बीत गये। परंतु अब हमारे पुत्र –पौत्रादियों को ही सही भारत की नागरिकता प्राप्त हो यही हमारी आशा है। नागरिकता संशोधन अधिनियम से उनके आखिरी दिनों में मन में षांति और जीवन में खुशहाली आई है।

6

जगन्नाथ मंदिर के स्वामीजी की गर्दन काट दी

शृंगेश्वर, पूर्वी पाकिस्तान के अनेक गाँवों की भाँति ही एक गाँव था। जहाँ तक नजर जाती वहाँ तक धान की खेती। कुछ खेतों में हरे तोते से सुंदर रंग की लहलहाती फसल तो कुछ खेतों में स्वर्ण –सी चमकती फसल खड़ी थी। बीच– बीच में बहता सोता। नदी की अनेकों षाखायें। सारा गाँव जैसे पानी पर तैरता हुआ हो, ऐसा सुंदर भ्रम होता था। यहाँ –वहाँ एक घर। ऊँचे–ऊँचे खड़े बाँस,,घनी घास की झाडियाँ, मिट्टी और चूने के मिश्रण से लेपित बाँस की छाजन, कमल के डंठलो को सिलसिलेवार जोड़ कर बनाया गया छाजन। गोबर लीपे चूल्हे से निकलता हुआ हल्का धुआं और चूल्हे पर पकते चावल की महक, केले के पत्ते

पर रखी हुई बाराळी मछली, साँझ की ढ़लती सुनहरी धूप के साथ गाँव भर में चली सरसों के तेल की खुशबू की सवारी।

वहाँ लगभग 500 के करीब हिंदुओं का घर थे। कुछ जमींदार थे कुछ नौकर। श्रम जीवी पर तृप्त जीवन था उनका। मेघना और पद्मा नदी से सिंचित भूमिपर बीज फेंकने भर की देरी होती थी कि अंकुर फूटकर उग ही आता। ऐसी उपजाऊ भूमि पर गाँव की आवश्यकता की पूर्ति के पश्चात बाहर बेचने के लिए भी फसल हो जाती थी। नवरात्री, दशहरा त्योंहारों में सारा गाँव एक साथ जमा हो जाता था। घर-घर में पकवानों की उठती खुशबू,और दसेक गाय- भैसों के साथ दूध दही की बहती नदी थी। गाँव के बीचों -बीच जगन्नाथ स्वामी जी का मंदिर था। जगन्नाथ जी को प्रतिदिन दूध की खीर और रशोगुल्ला का अभिशेक होता था। षाम को भजन कीर्तन और अगरबत्ती से उठता खुशबूदार धुआँ।

मखम पात्र जी का बड़ा परिवार था। 10-15 लोग थे। वैसे उस गाँव में लगभग सभी के परिवार में इतने लोग तो होते ही थे। चार भाई और उनके परिवार सभी मिल-जुल कर रहते थे। प्रत्येक परिवार में कम-से -कम 100 से 200 बीघा जमीन थी।(3 बीघा=1 एकड)। मखम जी के परिवार के पास 40 बीघा जमीन थी। 1968 के करीब इस गाँव में धीरे-धीरे मुसलमानों का प्रवेश आरंभ हुआ। वे 10 -12 लोगो का समूह बना कर प्रवेश करते थे। लोगों का उनके विशय में असभ्य लोग असंस्कृत लोग ऐसा प्रप्रथम अभिप्राय था। मुसलमान लोग जिस रास्ते से गुजरते उस रास्ते को लोग गोबर के पानी से सींच कर षुद्ध करते थे। गाँव के लोगों ने जो संस्कृति का ढाँचा बनाया था मुसलमान उस ढाँचे में नहीं आते थे। क्योंकि उनका चाल-चलन अलग था खान-पान अलग था। सुबह के समय गाँव भर घूम कर कहाँ क्या है? कैसा है? जानकारी लेते और फिर रात के समय गुप्तरूप से गाँव में प्रवेश करते थे। बाड़े में बँधी बकरियाँ, गोशाला में बँधे गाय- बछड़े आदि गायब होने लगे। क्या चल रहा है यह समझने में गाँव वालो को अधिक समय नहीं लगा। रात के समय रखवाली करने की नई जिम्मेदारी गाँव वालों पर आन पड़ी। रात के समय रखवाली करने वालों पर मुसलमानों ने आक्रमण किया और उन्हें मार कर भगाया। धान की कोठरी में आग लगा दी। खेत में तैयार खड़ी फसल को काट कर चुरा कर ले गए। सूखी घास से बने हुए घर होने के कारण कहीं

एक छोटी –सी चिंगारी भी पड़े तो आग लगने में देर नहीं लगती थी। 10–20 लोगों का झुंड़ बढते–बढते 100 लोगो का झुंड़ बन गया। अधिकतर लोगों के हाथ में चाकू, तलवार,लाठी होते थे। घर के अंदर घुस कर बर्तन– भांड़ों को फेंका, महिलाओं के गर्दन में हाथ डाल कर चेन खींची। गर्दन तक पहुँचने वाले हाथ को आँचल खींचने में देर क्या लगेगी। नंदनवन का भाँति हमारा गाँव नरक बन गया। महिलाओं का धैर्य पूर्वक गाँव में घूमना असंभव हो गया। गाँव वालों के लिए अपनी फसल, घर में महिलाओं की सुरक्षा करना एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी का काम हो गया। मखम पात्र के पिताजी पूर्ण चंद्र जी उस एक गाँव ही नहीं आस–पास के दसेक गाँवों के पंचायत में निर्णय सुनाने वालों मुख्य व्यक्ति थे। परंतु आज उन्हीं के घर वालों को जो कुछ हाथ लगा उसे ही सहेज कर पलायन करने की परिस्थिति में आ गए थे। घर, जमीन, संपत्ति सभी को छोड़ कर पलायन करते समय मखम पात्र जी के बेटे पालाश पात्र की आयु केवल आठ वर्श की थी।

पलायन करने वालों को दिशा का ज्ञान नहीं था। भारत में हमें आश्रय मिलेगा वहीं चलते हैं ऐसा सभी कहते तो थे परंतु किस दिशा में चलकर भारत पहुँचे समझ में नहीं आ रहा था। उस समय दलाल भी पैदा हो गए। पहले तो वे लोग असहाय हिंदुओं को रास्ता दिखाकर सहायता करने ढोंग रचते, उनका विश्वास जीतते, अपनी धन–संपदा हमारे हाथ दे दीजिए, हम उसे सुरक्षित रखेंगे कह कर ले लेते। भारत पहुँचते ही आप के सुपुर्द कर देंगे आप निश्चिंत रहें। हिंदुओं की स्थिति ऐसी थी कि वे इनकी बातों में न चाहते हुए भी आ ही जाते फिर जानवर के गले बँधी रस्सी की तरह सारे हिंदु इन दलालों के पीछे ही जाते। दिन के समय न जाने कहाँ –कहाँ छुपते, रात के समय चलते। रास्ते में ठहरने की व्यवस्था भी दलाल ही करते। यात्रा के समय कोई बात नहीं कर सकते थे। साँस भी लेने की आवाज नहीं आनी थी। दलाल कहते थे कि रोते हुए छोटे बच्चों को पानी में फेंक दो। हिंदुओं की सारी संपदा पर दगाबाज मुसलमानों का हक था। हिंदु एक–एक गाँव खाली करते जाते उस पर मुसलमान कब्जा करते जाते परंतु अब उनके बीच भी स्वामित्व का झगड़ा षुरु होने लगा था। एक ही रात में हिंदु जमींदार भिखारी बन जाते थे और भिखारियों सा जीवन व्यतीत करने वाले मुसलमान दसों बीघा जमीन और महल के मालिक।

दुर्गम जंगली रास्ता, पुलिस आ रही है खबर मिले तो रास्ता बदलना पडता था। कई बार दस –बारह मील आगे चलने के बाद उसी रास्ते पर वापस आना भी पड़ा है। किसी रास्ते से हिंदु गुजरने वाले हैं, सूचना मिलते ही पुलिस उस रास्ते को बंद कर देती थी या फिर अपनी टुकड़ी भेजती थी। कई बार पुलिस को भी कुछ धन –संपत्ति देकर आगे बढना पडता था। इस तरह कई बाधाओं को पार करते हुए त्रिपुरा के मार्ग से भारत में प्रवेश किया षरणार्थियों ने। भारत की सीमा में प्रवेश करते ही दलालो का व्यवहार बदल जाता था। अभी तक जो विनम्रता से बात करते थे सीमा प्रवेश करते ही "जाओ जाओ तुम्हारी जान बच गई यही खैर मनाओ पैसे आदि मांगने मत आओ" कहकर भगा देते थे। दलाल सीमा के अंदर नहीं आते थे। इस कारण उनके पास रखी धन–संपत्ति को दुबारा छिनना या लेना भी संभव नहीं होता था। धन गया तो जाने दो जान तो बच गई फिर से मेहनत कर कमा लेंगे यही बहुत है। यही सोच कर आगे बढ़ जाते थे। उनके पास चार–आठ पैसे भी नहीं होते थे। हाँ महिलाओं की कमर की अंटी कें खोंसे हुए पाँच–दस रूपए ही आपत– बांधव थे। भारत की सीमा के अंदर आजानेवाले षरणार्थियों की स्थिति–गति वहाँ के लोग समझते थे। वे इन निर्गति हिंदुओं को अपने घर ले जाते खाना खिलाते और हाथ में कुछ पैसे देकर निराश्रितों के कैंप तक भेजते। धर्मनगर, अगरतला, आदि नगरों को पार कर हिंदु निराश्रित आखिर अरुंधति कैंप में पहुँचते थे। अभी 64 साल के इंद्रभूशण जब निराश्रित कैंप पहुँचे तब उनकी आयु केवल 14 वर्श की थी। अपने परिवारों को खोकर उस बालक को कैंप में नींद नहीं आई। खाना खाया नहीं गया। नई जगह को स्वीकारने में कई दिन लग गए।

पालाश पात्र के लिए अभी भारत ही जन्म भूमि है। इस धरती ने उन्हें जीवन दिया है। अन्न–जल दिया है। सिंधनूर में बसे पालाश आज कन्नड़िगा बन गये हैं। उनकी माता बिल्लू रानी जी को कन्नड़ नहीं आती परंतु आज की युवा पीढी के सभी सदस्यों को कन्नड़ आती है। सभी कन्नड़ में ही व्यवहार करते हैं। जमींदारी की षान को खोने के बाद इस परिवार को अभी एक छोटा–सा घर ही मिला है। परंतु पालाश के परिवार को गाय– बछड़ों पर तिल भर भी प्यार कम नहीं हुआ है। इस कारण आँगन में सात–आठ गाय बँधी हुई है। हारमोनियम मिल जाए तो बस पालाश की उँगलियाँ रबिंद्रो षोंगीत पर ताल

देती हैं। बंगाली राश्ट्र गीत से उनकी मधुर आवाज खोली में भर–भर जाती है।

श्रृंगेश्वर के जगन्नाथ मंदिर में एक स्वामी जी रहते थे। गाँव का गाँव खाली हो जाने के बाद दुश्ट मुसलमानों ने उन स्वामीजी को बाहर खींच कर उनकी गर्दन काट दी। ऐसी उडती सी खबर मिली। परंतु उससे पहले गाँव के कई लोगों को भारत जाने की सलाह देने वाली यही स्वामी जी थे। ''आप सभी भारत जायें। यहाँ रहने से जान जाएगी। भारत में जाकर सुख से रहें। पर कहीं भी जायें बंगाल की संस्कृति और मिट्टी को ना भूलें'' ऐसा कहा था स्वामी जी ने। जब बंगाली दिशाहीन होकर परदेसी बन कर यहाँ आये तब उनके पास बंगालियों के पास उनकी अपनी संस्कृति को छोड़ कर और कुछ भी नहीं था। ''संस्कृति हो तो बाकि सब कुछ हम कमा सकते हैं'' गुरुजी की बात कितनी अर्थ पूर्ण थी।

7

गौरी दुःख

बंगाल से आई कई महिलाओं की कहानियों को हमने नहीं सुना और जो कुछ सुना भी तो विश्वास नहीं हुआ। वहाँ के मुसलमानों ने हिंदुओं को पकड़ कर भगाने से पहले लडकियों का अपहरण कर के उनका बलात्कार किया। आज कैंप में जीवन के अंतिम दिनों को गिन रही कुछ महिलाओं से बात की। आज भी उनकी आँखों में अव्यक्त भय दिखाई देता है। कुछ ने आँखों देखी सुनाई तो कुछ ने आप बीती। सुनाते हुए आँखों से झर–झर आँसू बहते रहे। मृत्यु के इंतजार में खड़ी 73 वर्श की सती की कहानी सुनने से तो ऐसा लगा कि कुछ लोग केवल खोने के लिए जन्म लेते हैं। उन्होंने अपने पिता की मौत को अपनी आँखों से देखा। उन लोगों ने पिताजी को मेरे सामने ही मरने तक चाकू घोंप–

घोंप के मारा, कहते हुए मौत की भंयकरता उनके चेहरे पर दीख रही थी। पिताजी को ही नहीं इन्होंने अपनी बहू को भी खो दिया है। परंतु बहू का अपहरण किया गया था। इनके –उनके घर में घुस कर मुसलमान लोग घर की बहू –बेटियों को उठा ले जाते हैं, ऐसा सुना अवश्य था। लेकिन एक दिन जब बहू हम सब को भोजन परोस रही थी तब मुसलमानों ने उसे उनके साथ चलने को कहा। जब हम सब ने विरोध किया तब उन लोगो ने हम सभी को बाँधकर हमारे सामने जबरदस्ती उठाकर ले गए। उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया ताकि एक धीमी– सी आवाज भी न निकले। और हमारे सामने ही उठा कर ले गए। कहते– कहते डर कर चुप हो गई सती। यदि और कुदेरते तो उनकी यादों की टोकरी में और भी बहुत–सी कहानियाँ थी। झुर्री भरे चेहरे और आँखों में धीमी रोशनी लिए रूंधे गले से उसने आगे कहा मेरे दामाद को भी उन लोगों ने मार डाला। भारत आते समय हमने अपनी बहू को बहुत ढूँढा पर वह कहीं नहीं मिली। हमारा भारत आना अनिवार्य हो गया था क्योंकि वे सब हमारे घर के अंदर आ कर बैठ ही गये थे। मुसलमानों का नाम लेने से आज भी उन्हें लगता है कि वे घर के अंदर आ गए हों। इतना डर उन्हें लगता है। " बहुत तकलीफ हुआ" कहकर सिसक– सिसक कर रोने लगीं। परंतु 50 वर्शों तक उस दर्द को दबा कर अभी तक कैसे जीवित हैं यह बाहर से देखने वालों की समझ से परे है।

सती की भाँति ही बर्बरता की साक्षी बनी सरस्वती। सरस्वती की उमर लगभग 70 के आस–पास होगी। उसका मुख इतना कपट रहित है कि देखने वालो को लगता है कि उनका जो भोलापन खो गया है वह एक महापाप के समान ही है। उसने, उसे जो कहना था कहकर, देखिए मेरे रोंगटे कैसे खड़े हो गए हैं, दिखाने लगी। उसने जो कहा कुछ ऐसा था– उन दुश्टों ने लडकियों के स्तन काट डाले मैंने अपनी आँखों से देखा। सभी लड़कियों को कतार में खड़ा करके उनके स्तन काट डाले और उनकी चीख –पुकार सुनकर खुशी से झूम रहे थे। इसे सुनकर आज की पीढी की लडकियाँ डर कर कांपने लगीं। कितना दर्द हुआ होगा? उन सब का आगे क्या हुआ किसी को कुछ नहीं मालूम। वे सभी जीवित तो नहीं ही होंगी सरस्वती ने कहा। लड़कियों को और भगवान को दूशित कर दें तो हिंदुओं को निर्नाम कर सकते हैं। ऐसा उनका पूरा विश्वास था। इस कारण से ही मुसल्मान लोग लड़कियों पर इतना अत्याचार करते थे। उनका भगवान भी उन्हें माफ नहीं करेगा। ऐसा श्राप तो

दिया पर उसमें आक्रोश ही नहीं था, बिल्कुल ठंड़ी आवाज। हाँ क्योंकि वह जीवन की अतिक्रूरता को देख कर गुजारा हुआ परिपक्व जीवन जो था। आज सिंधनूर का कैंप कैसा लगा रहा है पूछने पर –कितना भी अच्छा हो हमारी जन्मभूमि तो नहीं है न। हमेशा वहाँ की याद आती ही रहती है। एक बार भी फिर से वहाँ नहीं गई, वही एक दुःख है। सब कुछ छोड़ कर आने के बाद भी जन्म स्थान का मोह नहीं छूटा। पर इस स्थान से निर्मोह है ऐसा भी नहीं है। इस भूमि ने जीवन दिया है। यहाँ हम चौन से जी रहे हैं। किस पल जिंदगी कहाँ ले जायें कोई नहीं कह सकता है, किसी को भी पता नहीं रहता है, परंतु अंत में सभी षांति से ही समाप्त होता है। यही आश्चर्य है।

विनोति मंडल की पीठ झुक गई है। 1971 के बंगाल के युद्ध को अपनी आँखों से देखा है। ऐसी क्रूरता, मनुश्य तो कर ही नहीं सकता है। पहले ही हिंदु स्त्रियाँ मतलब वहाँ के मुसलमानों की लार टपकती थी। परंतु जो मैंने देखा है उसे कोई भी जीवित इंसान को देखना ही नहीं चाहिए। वह एक ऐसा घिनोना दृश्य था। मुसलमान लोग हिंदु गर्भवतियों के पेट को चीर कर उसमें से शिशु को निकाल कर नदी में फेंका करते थे। उस मां का रुदन, मुख का असहाय भाव और दर्द अभी भी मेरी आँखों के सामने आता है। मरने से भी अधिक "मेरे साथ ऐसा हुआ" यही दर्द उसको अधिक होता होगा। ऐसा मुझे लगता है। इससे भी हेय कृत्य कोई क्या होगा? गोली मार देने के बाद हाथ –पैर काट –काट कर ढेर बना कर रखते थे। पेड़ों के बीच जहाँ से भाग भी नहीं पाये वहाँ खड़ा करके गोली मारते थे। ऐसा सब कर के हिंदुओं के मन में डर बैठा कर ही उन्हें वहाँ से भगाना ही उनका उद्देश्य था। जब हम घर छोड़ कर आ रहे थे तब नदी के पानी का रंग लाल हो गया था। रास्ते के किनारे नालियों में खून ही बहता था। यह सब देख कर यहाँ आने के बाद भी जीवित हैं, यही अचरज की बात है। जीवन का कोई भी दुःख शाश्वत नहीं है। कैंप में एक – एक से बात करते हुए हमें जीवन का दर्शन हो जाता था, पर उनको जीवन की नश्वरता समझ में आ गई थी।

8

सुबह होने से पहले हमारा घर मस्जिद बन गया था!

बंगाली हिंदुओं के जीवन में मुसलमानों के द्वारा खेले गए खेल की कोई हद ही नहीं थी। एक तरफ अति दुश्ट कृत्य करते थे। और दूसरी तरफ जो कुछ भी हिंदुओं के पास था सब लूट लेते थे। पिछली रात तक जो हिंदुओं का घर होता था वह सुबह होते होते मुसलमानों का घर बन जाता था वहाँ अजान सुनाई देने लगती थी। आस–पास वालों को कैसा लगता होगा? विश्वास ही नहीं होता था। उस घर को छोड़ कर जाने वालों की स्थिति क्या होती होगी? जवाहरलाल स्वर्णकार के जीवन में यही हुआ। इनका परिवार इनके नाम के अनुरूप ही स्वर्ण का कार्य करते थे। ये आज के चाँदपुर जिले में या उन दिनों के जोटा लक्ष्मीपुर में रहते

थे। भरा–पूरा परिवार। 50–60 एकड़ खेत। महल जैसा घर। कुल मिला कर पूरे बंगाल में प्रतिशिठत और धनवान परिवार। ऐसा परिवार रातों– रात कंगाल हो रास्ते पर आ जाये तो मुसलमानों की कितनी क्रूरता होगी आप खुद ही सोचिए। उस समय जवाहर जी की आयु 18 वर्श की थी। खाने–पीने –ओढ़ने की कोई कमी नहीं थी। पिताजी, चाचाजी सभी की सोने की दुकान थी। जब जवाहर बारहवीं कक्षा की पढाई कर रहे थे तभी उन्हें मुसलमानों की दुश्ट बुद्धि का परिचय मिला। अपने आप अपना घर–बार दुकान खेती–बाड़ी करते हुए जीने वाले हिंदुओं पर इन मुसलमानों की नजर पड़ गई थी। थोड़े से आर्थिक रूप से कमजोर हिंदुओं के घरों में घुस कर उनके गाय भैंसों को उठा कर ले जाना फसल को चुरा लेना, सुंदर लड़कियों को उठा ले जाना चलता ही रहता था। ये हमें भी जीने नहीं देंगे जानते हुए भी अमीर होने के कारण किसी तरह बच सकते हैं ऐसा भरोसा था।

परंतु उस एक दिन, एक दल, रात के भोजन करते समय घर के अंदर आ धमका। अभी तुरंत घर खाली कर दो कहने लगे। अनीरिक्षित हमले से हम डरे तो फिर भी साहस करके निवेदन करते हुए कहा कि बच्चों को खाना खिला कर निकल जायेंगे। तो बंदूक तान कर कहा घर के अंदर खून खराबा होने की इच्छा हो तो खाना खिलाओ। तब परोसी हुई थाली के सामने से बच्चों को भूखा ही उठा कर सभी को बाहर आना पडा। अभी तक ऐशो– आराम की जिंदगी जीने वाले एक ही क्षण में कंगाल हो गये। गरीब को गरीबी नई नहीं लगती लेकिन धनवान को गरीबी आग की तरह जलाती है। जैसे ही घर वाले बाहर गये भगवान की तस्वीरों को आग लगा दी गई। घर के अंदर बने मंदिर को तोड़ –फोड़ दिया। दूसरे दिन सुबह होने से पहले मुसलमान परिवार वहाँ आकर बस गया था। वहाँ अजान सुनाई देने लगा। इससे अधिक अमानवीय कार्य कुछ हो सकता है क्या?

जवाहर जी के परिवार वाले घर से बाहर निकलते ही ब्रोकर की षरण में आ गिरे। डूबते को तिनके का सहारा कहावत की भाँति कोई सहायता के लिए आगे आये तो उस पर आसानी से विश्वास हो ही जाता है। सुभाश मिया नाम का ब्रोकर इन सभी को अगरतला की सीमा तक छोडने का भरोसा दिला कर कुछ पैसे ले लेता है। और साथ ही राह में लूट भी हो सकती है आप के पास जो कुछ भी मुझे दे दीजिए, वे लोग मुझे कुछ नहीं करेंगे कहकर सारा धन और कीमती सामान भी उसने ले लिया। पहले से बरबाद हुए थे आँख बंद

करके उसकी बातों में आकर सारा सामान उसके हवाले कर दिया। भारत की सीमा पर पहुँचने पर आप यहीं रहे अभी आता हूँ कहकर जो गया लौटा ही नहीं। जले पर नमक छिडकने के भाँति हुआ। सभी भारत के सोनामुना गाँव आ पहुँचे। कभी न देखा हुआ गाँव भारत है या बांग्लादेश समझ में ही नहीं आया।

पहले ही से कंगाल हुए अब एक और अग्नि परीक्षा। सुभाश मिया के विशय में लोगों से पूछा तो सबने कहा – आप ने सब कुछ उसके हाथ में देकर बहुत बड़ी गलती की वह वापस नहीं आयेगा। उसका तो यही धंधा है। ऐसा सुनते ही लगा कि पाँव के नीचे की धरती ही फट गई।

जवाहरलाल जी की माता का बचपन में देहांत हो गया था। पिताजी ने दूसरी षादी की। जवाहर लाल जी को कुछ मातृ संपत्ति प्राप्त होती है। इसकी जानकारी मिलते ही कुछ दुश्ट मुसलमान बालक जवाहर के गले पर छुरी रख कर डरा कर स्टॉम्प पेपर पर हस्ताक्षर करवा लेते हैं। उनके भाई से भी ऐसा ही करवाते हैं। इसकी जानकारी मिलते ही उनके पिताजी उस स्टॉम्प पेपर को कहाँ से लिया गया है, ढूँढ़ कर उन पर केस दर्ज करते हैं। कोर्ट से सर्च वारंट भी इश्यू किया जाता है। पुलिस घर के कोने–कोने की तलशी लेती है पर वे पेपर कहीं नहीं मिलते।

इससे दो बातें समझ में आती हैं। एक जवाहर लाल जी के पिता प्रतिश्ठित धनवान थे इस लिए मुसलमानों के विरुद्ध खड़े होते हैं। और मुसलमान हिंदुओं को धोखा देने के लिए कैसे– कैसे हथकंड़े अपनाते हैं। इस के साथ–साथ वहाँ की पुलिस एवं न्याय व्यवस्था भी ऐसी ही थी। बाढ़ के कारण मुसलमानों के घर डूब जाएं तो वे आकर हिंदुओं के खेत में घर बना लेते थे। तब कोर्ट, बना लेते हैं तो बना लेने दो आखिर उन्हें भी तो जीना है, कहकर कोई कार्यवाही ही नहीं करती थी। जवाहर लाल जी के पिता धनवान थे इस कारण थोड़ा साहस करके कोर्ट की सीढियाँ चढ़ें। लेकिन कई हिंदुओं को व्यवस्था को अनिवार्य रूप से स्वीकराना ही पडता था। छोटे से प्रतिरोध की भी संभावना नहीं रहती थी। और उन्हें देश छोड़ कर यहाँ आना पडा।

यहाँ से षुरु हुआ नया संघर्श। हिंदु मुस्लिम तनाव के कारण उस गाँव में कर्फ़्यू लगा दिया गया था। अब कहाँ जाए? अगरतला के शरणार्थी शिविर में जाना था पर किससे पूछे कैसे जायें। यूँही रास्ते पर खड़े होकर विचार करते समय एक हिंदु बंधु सहायता के लिए आगे आये। उन्होंने इन सब को एक किराने की दुकान में ले जाकर कुछ खाने का सामान बच्चों को बिस्किट आदि दिलाया। तब पिताजी ने अपने ट्रंक के अंदर वाले खाने से बंगाल के सौ का नोट निकाल कर दिया। उसे देखते ही बाकि सदस्यों के सांस में सांस आई। सब कुछ खोकर भिखारी बन गये हैं सोचा था। पर पिताजी ने यह सब पहले से ही भाँप लिया था इस लिए अपने कपड़ों के बीच कुछ पैसे छुपा कर रख लिए थे। कपड़ों का ट्रंक है मान कर किसीने उसे छीना नहीं था। थोड़ा सुस्ता लेने के पश्चात उनको एम.एल.ए के घर तक पहुँचा दिया। वहाँ से सिटि मेजिस्ट्रेट के पास पहुँचाया गया। उन्होंने सवारी की व्यवस्था कर सभी को अगरतला के शिविर पहुँचा दिया गया। लेकिन उस कैंप को बंद कर दिया गया था। उसे अरंधुति नगर में शिफ्ट किया गया था। वहाँ दो महीने रहने के बाद उन्हें माना कैंप भेजा गया। उस समय कर्नाटक के मुख्यमंत्री देवराज अरसु वहाँ आये थे। जवाहर उस बात को याद करते हैं। यहाँ–वहाँ कई कैंप में रहने के बाद सिंधनूर के कैंप में आकर बस गए। सिंधनूर आने से पहले मैसूर में सभी को जगह देने का विचार था। कुछ लोगों को ले जाकर जगह को दिखाया भी गया था। कावेरी नदी के पास की जगह अच्छी थी लेकिन बाद में सभी को यहाँ सिंधनूर में भेज दिया गया। जब यहाँ आये तो कुछ भी मतलब कुछ भी नहीं था। बंगाल की हरी–भरी नदी नालों से बहती उपजाऊ भूमि में रहने वालों को सिंधनूर रेगिस्तान की भाँति ही लग रहा था। कॉलोनी में सड़क भी नहीं थी। वर्शा ऋतु में पास के घर में भी जाना हो तो बहुत कठिनाई होती थी। वर्शा के पानी से मिट्टी घुल–घुल घुटनों तक आ जाती थी। सिंधनूर आने–जाने के लिए वाहन भी नहीं थे। प्रारंभ के पाँच साल तो सिंधनूर पैदल ही जाते थे। वहाँ जाए तो स्थानीय भाशा नहीं आती थी। वे लोग ''चलो–चलो'' कहकर जाने को कहते थे। ''बहुत तकलीफ उठाये हम'' कहकर आह भरते हैं। लेकिन आज कैसा लगता है पूछने पर धीमी गहरी हंसी हंसते हुए कहते हैं बंगाल में सोना खाकर भी चौन की नींद नहीं आती थी यहाँ पानी पीकर भी गहरी नींद आती है।

उन्नत षैक्षणिक और बौद्धिक स्तर में रहने वाले जवाहर जी का परिवार बहुत सारी कठिनाईयों को सह कर, पार कर आज एक अच्छी स्थिति में ही

है। सिंधनूर में पक्का घर बना लिया है। जवाहर लाल सिंधनूर के जूनियर गर्ल्स कॉलेज में अटेंडर रह कर सेवा निवृत हुयें हैं। बच्चों ने इंजीनियर की पढ़ाई की है। बेटा बंगलुरू के टाटा कंपनी में कार्यरत है। उसकी षादी हो गई है और बच्चे भी है। जवाहर लाल के सभी भाई भी उन्नत स्थिति में हैं। आपका घर जमीन आदि का क्या हुआ देखने एक बार भी बंगाल नहीं गए क्या? पूछने पर – वहाँ की याद आती ही रहती है परंतु वापस जाने में कोई अर्थ नहीं है। अब वो हमारा नहीं रह गया है। हमारे छोड़ते ही हमारे घर पर कब्जा करने वाले लोग अब इतने सालों के बाद उसे क्या छोडेंगें। वे लोग हमारे घरों में जिस प्रकार कौओं के घोंसले में कोयल अंड़े रखती है वैसे ही हमारे घर में आ बैठे हैं कहते हुए लंबी सांस भरी।

9

हर किसी की एक दुःख भरी कहानी।

सरस्वती बिस्वास अब 75 साल की है। जब वे स्वदेश छोड के आयी थी तब वे 25 साल की भी नहीं थी। उनके पति परिमल बिस्वास, ससुर नित्यानंद बिस्वास। उनका ससुराल संयुक्त परिवार था। उसमे 16 लोग थे। उनके पास 75 बीघा जमीन थी घर में 6–7 नौकर थे। उनका ससुराल बहुत अमीर था। एक खुशहाल परिवार था। लेकिन मुसलमानों के आक्रमण ने उस खुशहाल परिवार की खुशी को छीनकर सब कुछ बर्बाद कर दिया। गाँव में जो मुसलमान सैनिक आते थे वे युवतियों को जबरदसती खींच के ले जाते थे। पर बाद में उन लड़कियों का अता पता भी नहीं मिलता था। जब घर घर में औरतों का अपहरण, बलात्कार होने लगा तो उनको वह देशछोड़ने के सिवा

और कोई रास्ता ही नहीं था। सरस्वती के परिवार ने भी ऐसी हालात में ही गाँव छोडा था। गाँव छोड के जब यह परिवार भारत आ रहा थ तभी ये परिवार सैनिकों के हाथों में आ गया। सैनिकों ने इन सभी को मैदान में कतार में खडाकर बंदूक की गोलियों से भून दिया। जो लोग खड़े थे वे जमीन पर गिर पड़े, जैसे गुडिया तेज हवा के झोंके से गिर जाती है वैसे ही गिर पड़े। उनको मुँह खोलने का अवसर ही नहीं मिला। इसी कतार में सरस्वती भी थी, उसके बगल में पांच महीने का उसका बेटा तपन भी था। बंदूक की नली को लिंग या उमर से कोई मतलब नहीं था। उसकी नजर अब सरस्वती पर थी, ''ढ़ं'' करके आवाज आई और सरस्वती भी जमीन पर गिर गयी।

शायद 10–15 मिनट हुए होंगे, सैनिकों के बूट की आवाज सुनाई दी। वे हर एक को बंदूक से जोर लगा के चुभो चुभो कर देखते कि जीवित है या नहीं। किसी के भी शरीर से कोई आवाज आती या कुछ और आवाज सुनाई देती तो फिर से गोली चलाते थे। ऐसा ही एक अजानबाहु शरीर वाला सैनिक सरस्वती के पास आकर खड़ा था। उसने अपनी बंदूक से सरस्वती के शरीर को हिलाया, उसको बहुत दर्द हुआ, लेकिन वह हिली नहीं। वह चला गया। 15 मिनिट के बाद नीरव मौन छा गया। सरस्वती थोड़ा हिली, अब देखा, कोई

नहीं था। उसका पूरा शरीर खून से चिपक गया था। बन्दूक से निकली गोली सरस्वती के सीने पर नहीं लगी थी बल्कि पेट के निचले भाग को छूकर निकल गई थी।

वह गोली उसके पांच महीने के बेटे तपन की बाहों में लगी थी। उसे समझ में आ गया था कि अगर वह वहीं खड़ी रही तो गोली उसके सीने में सीधी लगती, यही सोचकर वह झट से जमीन पर गिर पड़ी थी, पर वह गोली उसके बेटे को नुकसान पहुंचा गई। बच्चे का घाव बहुत गहरा था। सरस्वती को डर था कि बच्चा दर्द के मारे जोर से रोने लगेगा तो सैनिक वापस आ जाएंगे। इसीलिए उसने बच्चे के मुँह को अपनी साड़ी से बंद कर दिया जब सैनिक लाशों को हिला– हिला के देख रहे थे तब भी सरस्वती ने लाश के जैसे ही अभिनय कर विजय हुई।

पुलिस के जाने के बाद सरस्वती ने बच्चे को उठाकर, बच्चे के हाथ को जिस से खून बह रहा था, अपनी साड़ी को फाड़ कर बाँधा और उसको दूध पिलाते हुए भागने लगी। भागते–भागते उसने बहुतदृसी लाशों को, और उसके पास रोते हुए बच्चों को देखा, उसे उन सभी बच्चों को ले जाने का मन था लेकिन वह असहाय थी। सरस्वती के छह बच्चे हैं। मोनिता, रीता और तपन बंगाल में पैदा हुए थे और नोमिता, दिलीप, दुर्गा भारत में पैदा हुए। तपन जो सरस्वती की देखभाल कर रहा है, उसके हाथ में आज भी उस दिन की क्रूरता का निशान देख सकते हैं। आज जब हम 75 साल की सरस्वती को देखते हैं तो उनके धैर्य, स्थैर्य, और औरत होकर भी जो उन्होंने असाध्य को साध्य किया इन सभी के लिए उन पर गर्व होता है और आश्चर्य भी होता है।

– 2 –

फकीरचंद्र राय के बेटे मनोरंजन राय की उम्र अब 70 साल की है। इन्होंने अपनी आँखों से उनके अपने गाँव में बांग्ला मुसलमानों को उनके पाकिस्तानी दोस्तों के साथ मिलकर हिन्दुओं के घरों को मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा कर जलाते हुए, देखा है। जब वे देश छोड़ के आये तब वे 20 साल के थे।

देश छोड़ कर आना इतना आसान भी नहीं था। कुल्ना, पश्चिम बंगाल और भारत के नजदीक ही था, लेकिन वहाँ से भारत की सीमा पहुंचने के लिए

40–50 किलोमीटर पार करना विद्युत तार के ऊपर चलने जितना खतरनाक था। हिन्दुओं की आने की खबर अगर मिल जाए तो पाकिस्तानी सैनिक तुरंत आ जाते थे। अगर उनके आने के रास्ते में कोई पुल या बाँध होता तो उसे तोड़ देते थे। नाव में जानेवाले हिन्दु निराश्रितों का भी दूसरे नाव से पीछा करते हुए बहुत बुरी तरह से सताते थे। अगर हिन्दुओं को सेना के आने की खबर मिल जाती तो उनको छुपना पडता था नहीं तो दूसरा रास्ता ढूंढना पडता था।

1971 का एक दिन, बंगाल में युद्ध घोषित हो गया था। हिन्दुओं से भरा हुआ गाँव एक – दो दिन में पूरी तरह खाली हो गया। हिन्दुओं की बड़ी भीड़ पलायन कर चली। कुल्ना और बेगार्हाट से हिन्दुओं के समूह भारत की ओर आने लगे। बोद्रा नदी को पार करके चुका नगर आ गए। उधर से सटकिरा रास्ते से पश्चिम की ओर जाते तो भारत में प्रवेश कर जाते। चुका नगर में जब हिन्दू पहुँचे, और वे बहुत ही बेताबी से रात होने का इन्तजार कर रहे थे। पर सुबह करीब 10 बजे सैनिकों का आक्रमण हुआ। वे तीन ट्रक में आयें थे। कई सैनिकों के हाथ में आधुनिक मशीन गन और कई सैनिकों के हाथ में साधारण रायफल थे। उतरते ही उन्होंने बाजार पर कब्जा कर लिया।

यह बात स्पष्ट थी कि जिन मुसलमानों ने इनको आश्रय दिया था उन्हीं लोगों ने इन को सुराग भी दिया था। क्योंकि सैनिकों ने हिन्दुओं को ढूंढ़ ने का प्रयास ही नहीं किया सीधे हिन्दुओं के छिपे स्थानों पर ही आक्रमण किया। पाटकोला में शुरू हुई फायरिंग मिनटों में पूरे बाजार में फैल गई। हिन्दुओं ने जब भागने की कोशिश की तो उनको क्षण भर में मशीनगन ने ठण्डा कर दिया। गाँव में सिर्फ गन की ही आवाज सुनाई दे रही थी। दुकानों के पीछे, गोदामों में, घर की छत पर जहाँ कहीं भी हिन्दू छुप के बैठे थे, सभी जगह फायरिंग की धूम, खून की नदी, चीख–चिल्लाहट, रोना यही सुनाई दे रहा था।

फायरिंग जो सुबह 10 बजे शुरू हुई थी वो दुपहर 3 बजे बंद हुई। 13 अप्रैल 1919 जलियाँ वाला बाग में हुई गोलीबारी में 1000 भारतीय मारे गये थे। 1971 20 मई के दिन बंगाल के चुका नगर में सिर्फ आधे दिन में दस गुना मारे गये थे। फिर भी यह बात बांग्लादेश के बाहर, भारत में बहुत कम लोगों को मालूम है।

भारत जाने वाले लोगों को भयभीत करना ही उनका मकसद था। इसके अलावा हिन्दुओं की संख्या को जितना कम कर सके कम करना भी और एक मकसद था। उधर मुसलमानों ने लाशों को हाथगाड़ी में लाद कर पास की नदी

में फेंक दिया। उन लाशों को नदी में फेंक कर खून से रंगे हाथ धोने में ही उन्हें दो दिन लगे होंगे। नदी में शव तैरकर आने लगे। नदी मार्ग से आने वालों को तो बहुत से शव को देखने मिलें। 20 मई 1971 के बाद जितने भी बांग्ला हिंदु उस रास्ते से भारत आये उनके दिल–दिमाग पर यह हिंसा की तस्वीर छप गई है।

— 3 —

भारत की सीमा में जो बांग्लादेश से निराश्रित आये उनको मध्यप्रदेश के माना जिले मे रखा गया। 1968 से 1971 तक बांग्लादेश से आये हुए निराश्रितों की संख्या एक करोड़ से भी अधिक थी। हर दिन बांग्लादेश से 11 हजार से भी अधिक निराश्रित सीमा पार कर भारत आते थे। ऐसे आने वालों को रोटी, कपड़ा और मकान देना भारत के लिए एक बड़ा सवाल हो गया था। कई निराश्रितों ने याद किया है कि जो खाना उनको माना में दिया जाता था, वह इतना अच्छा नहीं था। कई दिन के बाद निराश्रितों को माना से देश के 18 राज्यों में भेजा गया। उनमे से 900 परिवारों को कर्नाटक के सिंधनूर भेजा गया।

उस समय सिंधनूर प्रगति की सोच से परे एक बहुत ही पिछड़ा हुआ जिला था। पौधों में साँप और बिच्छू जैसे विषधर भरे हुए थे। गाँवो से आये हुए लोगों को चिंता इस बात की थी कि इस बंजर भूमि में कैसे जिंदगी आबाद करेंगे? उन लोगों को तो यहाँ की संस्कृति, भाषा की पहचान भी नहीं थी। संप्रदायों की तो गंध भी ज्ञात नहीं था। आरंभ में सांप के काटने से बहुत लोगों की मौत हो गई। इन निराश्रितो को पहले कैसे भी हो एक तालाब को ढूंढना था, ढूंढ़ लिया। जब उन्हें पता चला की उसमें मछलियाँ भी हैं तो उनकी खुशी की सीमा ही नहीं रही।

वनमाली सना 3–4 भाई थे। जब उनको माना कैंप से अलग–अलग कैंप में भेजा गया तब यह परिवार अलग हो गया। वे बंगाल से एक साथ ही निकले थे। पर अलग–अलग जगह भेजने से परिवार वाले अलग–अलग हो गये। तब आज के जैसे व्हाट्स एप और फेसबुक तो नहीं थे। इसीलिए बिछड़ गए तो मिलना मिलाना बहुत मुश्किल ही नही नामुमकिन था। वनमाली सना का एक भाई नीलमनी सना उत्तरप्रदेश के एक कैंप मे चला गया, और एक भाई कालीपद सना ओडिशा के कैंप मे चला गया।। 1971 में युद्ध समाप्त होने के

बाद जब मुजीबूर रहमान की सरकार आई तब उन्होंने अपने निरश्रितों को वापस बुलाया। कुछ लोग देश बदल गया है, ऐसा सोच कर वापस बांग्लादेश चले गये। वनमाली के पिता और उसके काका वापस बांग्लादेश चले गये। इस तरह एक परिवार कई शाखाओं में बंट गया।

कई साल के बाद वनमाली ने बांग्लादेश जाकर अपने बीमार पिता को भारत ले आये। उनके जमीन का कई हिस्से मुसलमानों ने ले लिया था। जो बचा था, उसको परिवार के लोगों ने आपस में बांट लिया। माना कैंप में तीन साल बिताने के पश्चात वहीं वनमाली की शादी हो गई। भारत में अपनी शादी शुदा जिंदगी को प्रारंभ करने के पश्चात उन्हें वापस जाने का मन नहीं हुआ। इसलिए अपने पिताजी को भी यहीं ले आयें और इलाज करवाया। लेकिन अचरज की बात ये हुई की जब खुद वनमाली बीमार पडे, तो वे यहाँ के उपचार से ठीक ही नहीं हुए तब वे बंगाल जाकर अपने पुराने वैद्य कविराज के पास कोलगोल में इलाज करवाकर ठीक हुए।

1978 से 1994 तक वे 7–8 बार बंगाल होकर आये पर उन्होने पासपोर्ट का इस्तेमाल नहीं किया। हर बार मध्यवर्ती दलाल की सहायता से बांग्लादेश होकर आते थे। प्रारंभ में इन दलालों का रेट बहुत कम था,। 100 या 200 रुपयों से काम हो जाता था। लेकिन बाद में वे बहुत महंगे हो गये। मध्यवर्ती अब हजारो में मांगने लगे। इसीलिए 1994 के बाद वनमाली बंगाल नही गये।

उधर वनमाली के पिता के नाम पर जो 18 बीघा जमीन थी, अब और किसी की हो गई थी। कभी कभी वनमाली को सभी बातें याद आती हैं, लेकिन प्रवाह के विरुद्ध तैरना नामुमकिन है। इसीलिए सामने जो जिंदगी आयेगी उसे स्वीकार करना और जीने में ही जिंदगी की सार्थकता है। वनमाली नें यह सबक जरूर सीख लिया है।

हमने वनमाली से दलालों से संबंधित किसी घटना के विषय में पूछा, तो उन्होने हमें यह घटना बताई। एक बार एक औरत ने दलाल से भारत पहुंचाने के लिए सहायता मांगी। उस औरत के पास कुछ भी नहीं था। निराश्रितों की तरह सब कुछ खो बैठी थी। उसके पास देने के लिए न पैसे थे न सोना। लेकिन दलाल मुफ्त में काम करने के लिए तैयार नहीं था। उसकी नजर औरत के हाथ की उँगली में चमक रही अंगूठी पर गई वह अँगूठी देने की जिद करने लगा। उसने कहा "वह दो ? वह मेरी शादी की अँगूठी है कैसे दे दूँ? उस औरत ने प्रश्न पूछा? परंतु वह समय उसकी भावना को समझने का नहीं था

और फिर भावना को समझने का दिल भी तो उस दलाल के पास नहीं था। औरत सब कुछ खो बैठी थी। वह अंगूठी उसके पति की आखिरी निशानी थी। इसीलिए औरत का मन अंगूठी देने का नहीं था। पर दलाल तो छोडने वालो में नहीं था। आखिर में न चाहते हुए भी उस औरत ने वो अंगूठी दे ही दी। बंगाल को छोड़ कर आते समय वह औरत अकेली थी। उसका पति पहले ही गोलियों का शिकार हो चुका था परिवार वाले कहीं अलग दृअलग हो गये थे। जमीन– जायदाद कुछ भी उसके पास नहीं था, थी तो बस वह अँगूठी ही थी उसके पास उसे भी दलाल ले कर चला गया। सच ही है लेन–देन में दिल का क्या काम। उसके बाद वह औरत बहुत रोई, पता नहीं उतने आंसू वह कहां छुपा कर रखी हुयी थी। परंतु उसे सांत्वन देने की स्थिति में मैं भी नहीं था। हम सब की जिंदगी भी तो बरबादी का कफन ओढ़ कर ही खड़ी थी। उसकी आगे की जिंदगी में क्या हुआ होगा? ये सोच कभी–कभी दिल और दिमाग पर हावी हो जाती है।

— 4 —

बंगाल में जो हत्याकाण्ड हुए वे जाति या धर्म के आधार पर नहीं थे। उसे भाषा के आधार पर हुआ हत्याकाण्ड साबित करने के लिए 1970 के दशक में बहुत से प्रयास किए गए। भारत के धर्म निरपेक्ष माध्यम ने तब भी हिन्दूओं का साथ नहीं दिया, यह ध्यान देने वाली बात है। पूर्वी पाकिस्तान में मुसलमान और हिन्दू दोनों ही बंगाली बोलते थे। लेकिन पश्चिमी पाकिस्तान में जब उर्दू भाषा को सरकारी भाषा घोषित किया गया, तब बंगाल में हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदायों ने इसका विरोध किया। तब पश्चिमी पाकिस्तान के लोगों ने उन पर अत्याचार करना शुरू किया। इसमें पूर्व का हिन्दू समुदाय बली का बकरा बन गया''। इस राग को अलापते सालों बीत गये हैं। लेकिन यह पूरा सच नहीं है। जब से पूर्वी पाकीस्तान को 1947 में आजादी मिली तब से हिन्दूओं को उस देश से भगाने की प्रक्रिया प्रारंभ हुआ। जमात–ई–इस्लामी, मुस्लिम लीग, निजाम–ई– इस्लाम, जामियात, उलेमा पाकिस्तान आदि राजनीतिक पक्ष धर्म के नाम से हिंसाचार कराते थे।

जमात–ई–इस्लामी संघठन ने अल दृबद्र (चंद्र) और अल दृशम्स (सूर्य) दो संघठनों का निर्माण कर, उन्हें पूर्वी पाकिस्तान में हिंसाचार करने के लिए हर

तरह से सहायता की। इनके साथ रजाकरों ने भी हाथ मिलाया। हिन्दूओं के घर के बाहर ये संघठन पीले रंग में "हेच" लिखते थे। यह हिन्दूओं के घर का संकेत होता था। बाद में मुसलमान सैनिक उस घर में घुसकर लूट मार करते थे। बेटियों को घर से बाहर खींचकर सामूहिक अत्याचार करते थे।। 1941 के बांग्लादेश के जनगणना के अनुसार हिन्दूओं की संख्या लगभग 1.17 करोड़ थी। लेकिन 1961 मे उनकी संख्या 94 लाख तक गिर गई। देश की जनसंख्या मे हिन्दूओं की संख्या 10% तक कम हो गई। 1971 में केवल नौ महीनों में बांग्लादेश में 25 लाख से भी अधिक हिंदुओं को मार दिया गया।

यह तो एक कहानी है। दूसरी तरफ बांग्लादेश में जो मंदिरों का नाश हुआ उसकी एक और कहानी है। कालीदासी गोल्दार के कहने के अनुसार दुश्मनों के निशाने का क्रम तीन था, वे थे – मन्दिर, औरत और जायजाद। देश में जितने भी काली मन्दिर और हरिचान्द मन्दिर थे, सबको ढूंढ़ ढूंढ़ के तोड़ दिया गया। मन्दिर के सामने गायों को मारकर उनके शरीर के टुकड़े करके फेंकते थे। पुजारियों का खून ज्यादा ही होता था। सार्वजनिक स्थानो में अगर औरते दिखाई दी गई तो जबरदस्ती उठा ले जाते अत्याचार करते थे। इसलिए औरतें मन्दिर आने–जाने से भी डरती थीं। दुर्गा पूजा के समय देवी का विसर्जन करना भी मुश्किल हो गया। 1947 के बाद हजारों मन्दिरों को तुडवा दिया गया। 1992 में जब भारत में अयोध्या की घटना हुई तब बांग्लादेश में एक हफ्ते में 357 मन्दिरों को तोड़ दिया गया। 1970 के दशक में हिन्दूओं की 10.5 लाख एकड़ जमीन को मुसलमानों ने जबरदस्ती हडप लिया। इसमें हजारों मन्दिर और मन्दिरों की जमीन भी थी।

अपने समुदाय की इतनी हीन स्थिति होने के बाद भी हिन्दू समाज के भरोसे की तीन रोशनी थी वे है, काली माता, चौतन्य महाप्रभु और हरिचाँद ठाकुर। अपने जमीन से बहिष्कृत होने के बाद भी भारत के कोने कोने में बिछडकर रहने वाले बंगालियों का भरोसा इन तीन रोशनियों का बल और ये तीन महान विभूतियाँ ही हैं

बांग्लादेश के पुनर्वासित शिबिरो में इन तीनों का मन्दिर का होना सर्व सामान्य है। बांग्लादेशी हिन्दूओं में बहुतेक वैष्णव हैं। वैसे हरिचाँद ठाकुर द्वारा स्थापित मतुवा समुदाय के लोग हैं। इस भक्ति भाव ने हिन्दूओं को मुश्किल समय में कैसे पार किया? इसको साबित करने के लिए कृष्णधन बिस्वास का जीवन ही एक उदाहरण है। कृष्ण धन पूर्वी पाकिस्तान में जब 12 वीं कक्षा में

पढ़ रहे थे, तब वहाँ हिन्दूओं की परिस्थिति बहुत शोचनीय थी। इतनी बुरी थी कि उनको देश छोड़ के भागना पडा। मगर कृष्णधन के घर वालों ने सोचा की अगर कृष्णधन को भारत लेके गये तो उनकी शिक्षा आधी रह जाएगी। इसलिए उन्होने कृष्णधन को बंगाल में एक वैद्य के घर में छोड़ के जाने का फैसला किया। कृष्णधन हरिचाँद ठाकुर का परम भक्त था। कृष्णधन हरिचाँद ठाकुर को इतना मानता था कि उसे यकीन था कि अगर उसे कुछ हो भी गया तो उसके गुरू का आशीर्वाद उस पर सदैव रहेगा। इसी श्रद्धा और विश्वास के बल पर कृष्ण धन ने बंगाल में अपनी शिक्षा आगे बढाया।जिस में कृष्णधन रहते थे, उस घर के यजमान बहुत ही कुशल वैद्य थे। उनके पास मुसलमान भी चिकित्सा लेने आते थे, इस कारण से मुसलमान संघठन के लोग इस वैद्य के घर में कभी भी नहीं घुसते थे। क्योंकि वे निःस्वार्थ भाव से सेवा करते थे। वे जात–पात में विश्वास नहीं रखते थे और भेदभाव भी नहीं करते थे।

एक दिन की बात थी कि वैद्य की घर में किसी को कुछ दवाई की जरूरत थी। पर वह दवाई घर में नहीं थी। कृष्णधन को दवाई लाने के लिए बाजार जाना था। वह चल पडा। शहर में कर्फ्यू जारी था। शहर के हालात कुछ भी ठीक नहीं थे। शहर में जितने भी हिन्दूओं के घर थे वो सब मुसलमानों के हो गए थे। अगर कोई हिन्दु रास्ते में दिखे तो मुसलमान उनको घेर कर उस का सब कुछ छीन के, और मार पीट के उसको भगाते थे। कृष्ण धन १८ साल का था। जब वह रास्ते में चला तो उसको समझ में आया की हालात कुछ भी ठीक नहीं है, क्योंकि रास्ते में कई लोग कृष्णधन को सर से पाँव तक घूरकर देख रहे थे। उसको लगा कि कभी भी उस पर आक्रमण हो सकता है। उसने अपने आराध्य देव हरिचाँद ठाकुर का ध्यान करते हुए दवाई की दुकान जाकर, दवाईयां ले ली और वापस घर चल पडा। उसको वापस उसी रास्ते से आना था, क्योंकि और कोई भी दूसरा रास्ता नहीं था।

जब वह घर आया तो घर का दरवाजा खुला था, और घर में कोई नहीं था। उसने कोना – कोना देखा, हर एक कमरा भी देखा, कहीं भी कोई नहीं था। अब उसे बहुत घबराहट हुई। कृष्णधन ने अपने आराध्य देव का ध्यान करते बैठ गया। अचरज की बात ये हुई कि थोड़ी ही देर में घर के लोग घर वापस आ गये। बाद में मालूम पड़ा कि उनको सूचना मिली थी कि मुसलमान संघठन उनके घर पर भी आक्रमण करने वाले हैं। इसीलिए वे अपने आप को बचाने के लिए जंगल में छुप कर बैठे थे।

कृष्णधन बिस्वास अपनी शिक्षा पूर्ण कर भारत आ गए, अपने परिवार के साथ रहने लगे और कोलकत्ता में कॉलेज की शिक्षा पूरी कर नौकरी करने लगे। निवृत्ति के बाद अब सिंधनूर में बांगला निराश्रित पुनर्वास शिविर में निवृत जीवन बिता रहे हैं। अपने घर में ही उन्होनें हरिचाँद ठाकुर और हरिचाँद ठाकुर की पत्नी के लिए, एक छोटे दृसे मन्दिर का निर्माण किया है। इन दोनो मूर्तियों की प्रतिदिन पूजा की जाती है। पुनर्वस्ती प्रदेश में शाम पाँच बजे के बाद हर जगह भजन, कीर्तन, झाँझर की आवाज सुनाई देती है। गाँव के बुजुर्ग अपनी पेटी, ताल, तबला, ढोल सब लेकर भावावेश से गाते हैं। बाद में पूजा, प्रसाद का वितरण होता है। यह संप्रदाय पीढी दर पीढी से चली आ रही है। और समुदाय को एक साथ जोडकर रखने की अद्‌भुत शक्ति के रूप में स्थापित हो गई है। सिंधनूर में एक दाढी वाला बुजूर्ग खुद से बनाये हुए कालीमाता के मन्दिर के सामने बैठ कर कहते हैं कि "काटने वाले तलवार सौ आए तो भी थामने वाला हाथ एक जरूर होता है"। याने जाको राखे साईंयाँ मार सके न कोय।

10

भारत की पुलिस ने जामुन दिए

गले में तीन तार की तुलसी माला, काजू जैसे आँख और कृश देह, बनियान पहन कर बैठे सुंदर सरदार बहुत देर से इनकी– उनकी कही कहानियों को सुनते बैठा ही था। लगभग 65 साल की उमर। जब बात करना षुरु किया तो इतने सालों से दबा कर रखी गई कहानियों को खोलता कहता गया।

'वे बहुत मारते थे'' कहकर बात षुरु करने वाले सुंदर की बातों में केवल कटु अनुभव ही भरें थे। उस समय मेरी उम्र केवल 13 साल की ही थी। लेकिन हमारी जिंदगी खतरे में है यह समझ में आ रहा था। आस–पास के घरों में मुसलमान आए थे। लूट मचाई थी। अपने माँ के घर भाग जाओ कह कर भगाए थे। घर में होने वाली ये बातें सुनी थी। एक दिन हमारे केवल ढ़ाई एकड़ की जमीन पर खड़ी फसल को चुरा कर ले गए पिताजी की मेहनत पर पानी फिर गया। जाकर देखा तो अब से यह जमीन हमारी है कहकर भगा दिया। अगले दिन हमारे घर आकर यह घर भी हमारा है कहने लगे। विरोध करने पर मेरे भाइयों को बहुत मारा। उसी दिन फिर रात को आ कर अपने माँ के घर जाओ कहकर हमारे सामान को बाहर फेंक दिया और हमारे गाय बछड़े को खोल कर ले गए। घर घर नहीं रहा एक ही घंटे के अंदर हम रास्ते पर आ गए। जब कोई चारा नहीं बचा तो बचे हुए सामानों को चुन कर वहाँ से निकलना ही पडा। उनके अनुसार अपनी माँ के घर जाओ मतलब भारत जाओ से था। हिंदुओं को केवल भारत में ही रहना चाहिए ये हमारा देश है कहकर हमें प्रताडित करते थे। भारत की आजादी से पहले वह हमारी ही जमीन थी। पीढ़ियों से हम वहाँ रहते आये थे अब वह हमारी जमीन नहीं है कहेंगे तो

हम कहाँ जायेंगे? लेकिन तब तक माता पिता ने अब यहाँ रहना ठीक नहीं है निकलना ही सही है निर्णय ले लिया था। रात ही को बचे सारे सामान को सहेज कर नदी के किनारे आये। हमारे लिए एक ही रास्ता भारत की ओर का बचा था। वहाँ हमें स्वीकारेंगे कि नहीं पता नहीं? वहाँ कहाँ जाएं पता नहीं किस पर विश्वास करें पता नहीं। फिर भी इन क्रूर लोगों के हाथ जान गँवाने से अच्छा है कि परदेश की भूमि पर किसी भी तरह जीना, सोच कर हम सब चल ही दिए। मैं, मेरे माता– पिता, मेरे तीन बड़े भाई और हमारे समुदाय के धर्मगुरु भी हमारे साथ ही निकले। भारत में हम सभी को आश्रय मिलेगा कोई भी यहाँ न रूके। गुरुदेव की आज्ञा थी और उनकी बात पर विश्वास कर हम सब चल दिए। नदी के किनारे पहुँचने पर हमारी तरह ही हजारों लोग भारत जाने के लिए नाव के इंतजार में खड़े थे। अंधेरा होने पर भी बहुत बड़ी भीड़ थी। इतने में वहाँ बांग्लादेश की पुलिस आ गई। तुम सब कहीं नहीं जा सकते कहकर कैद कर लिया। पर मुसलमानों से हमें बचाने को भी तैयार नहीं। कुछ लोग पुलिस के साथ हाथा–पाई कर नाव पर चढ़ गए। किसी तरह सुबह होने तक हम भूम्रा सीमा तक आ गए। भारत में प्रवेश के समय लगभग 3000 से भी अधि ाक लोग थे। परंतु माना कैंप में केवल 500 लोगों को दाखिला मिला। बाकि सब का क्या हाल हुआ पता नहीं। भारत में प्रवेश करते समय भूख से तडपते हम सभी को भारत की पुलिस ने गुलाब जामुन खिलाया। कोई और समय होता तो षयद इस बात को हम भूल जाते परंतु खतरे पर खेल कर जान बचा कर आये हम सभी को मीठा खिला कर स्वागत किया गया ऐसा लगा। आगे माना कैंप में दो साल बिताने के पश्चात सिंधनूर आए। यहाँ हमारी नई जिंदगी का आरंभ हुआ मेरे सभी बड़े भाई यहीं हैं। माता–पिता नहीं रहे। भारत ने हमें हमारे देश को ही और अधिक षांति, सुख,चौन से भर कर वापस किया है। कर्नाटक तो राम राज्य ही है। यहाँ के लोग बहुत मृदु भाशी हैं। हम मुसलमानों की क्रूरता देखकर आये हैं। कोलकत्ता में हमारे सभी बंधु रिश्तेदार हैं। बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश सभी कैंपों में रहकर यहाँ आयें हैं। लेकिन कहीं भी कर्नाटक जैसी षांति नहीं है। यहाँ हम फिर से जिंदगी को विश्वास से जी रहे हैं। कहते हुए अपनी बात को पूर्ण विराम दिया। इतने में उसी का हूबहू उसका बड़ा भाई दीन बंधु सरदार भी वहीं आ गया। एक और भाई बाहर उकड़ूँ बैठ कर धूप सेंक रहा था। उसका नाम भावेन सरदार। तिलक सरदार घर पर होगा कहा उसने। भले ही उनकी जिंदगी को तो किसीने चुरा लिया, लेकिन आज ये सभी अपने पुत्र– पौत्रो के साथ सुख पूर्वक जी रहे हैं।

11

जैसे थे वैसे चले आए
चित्रावली

12
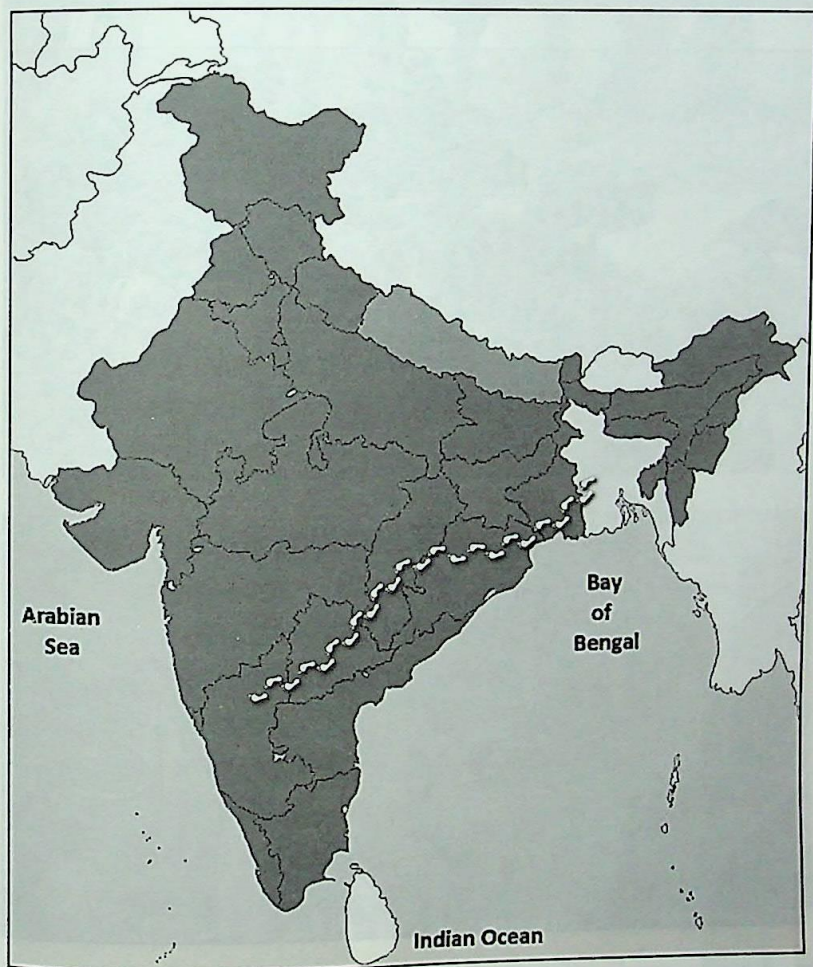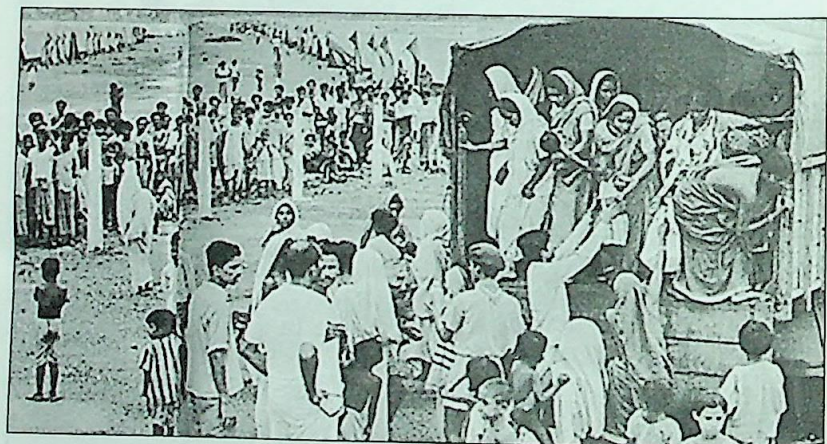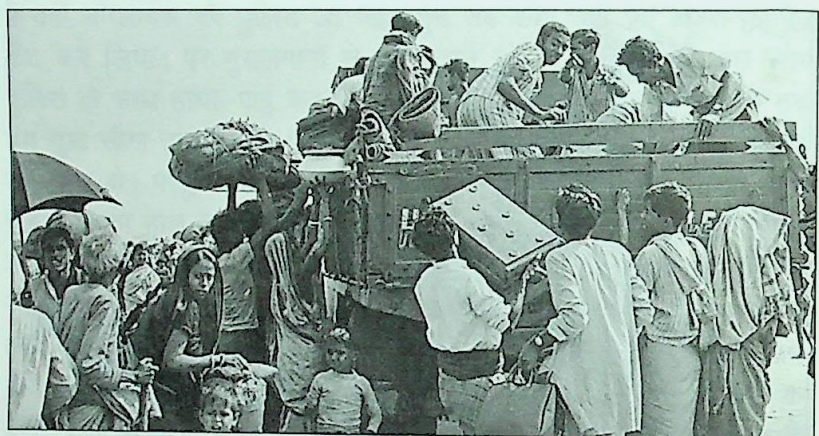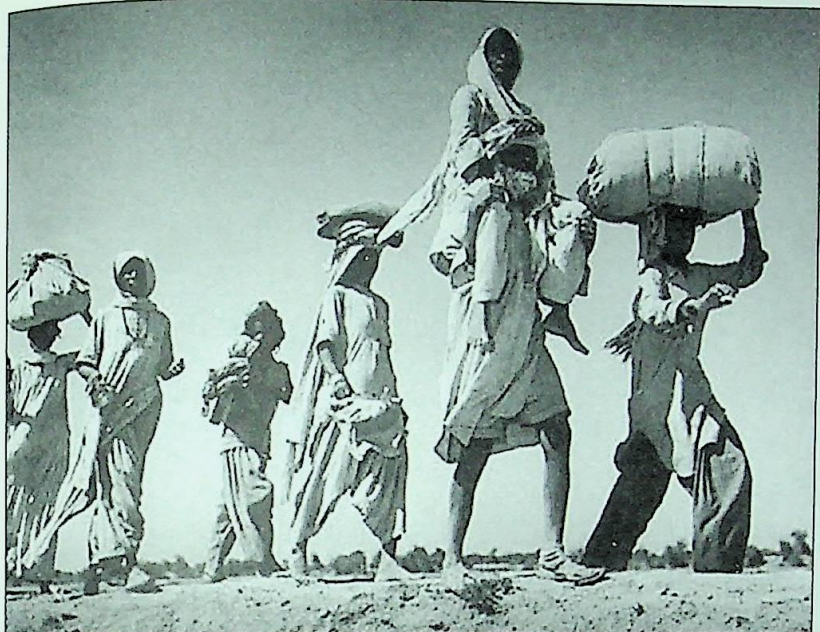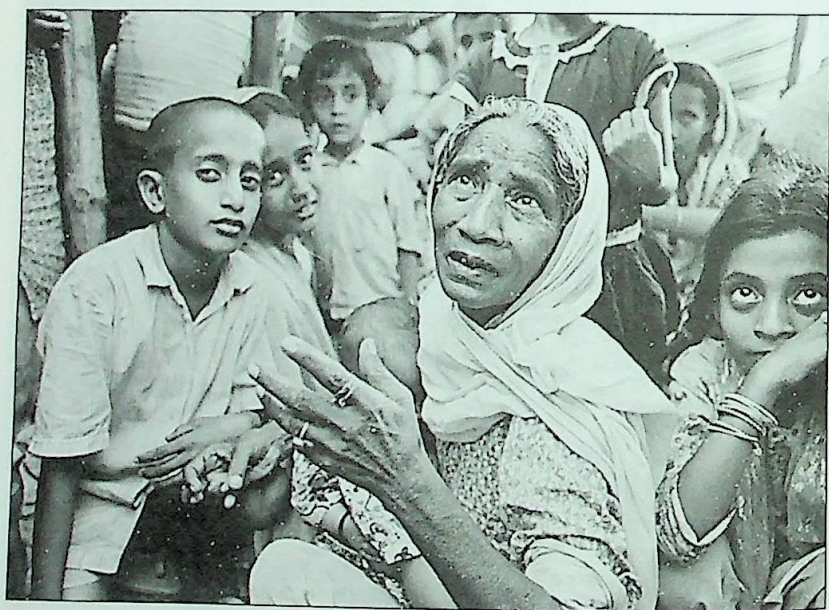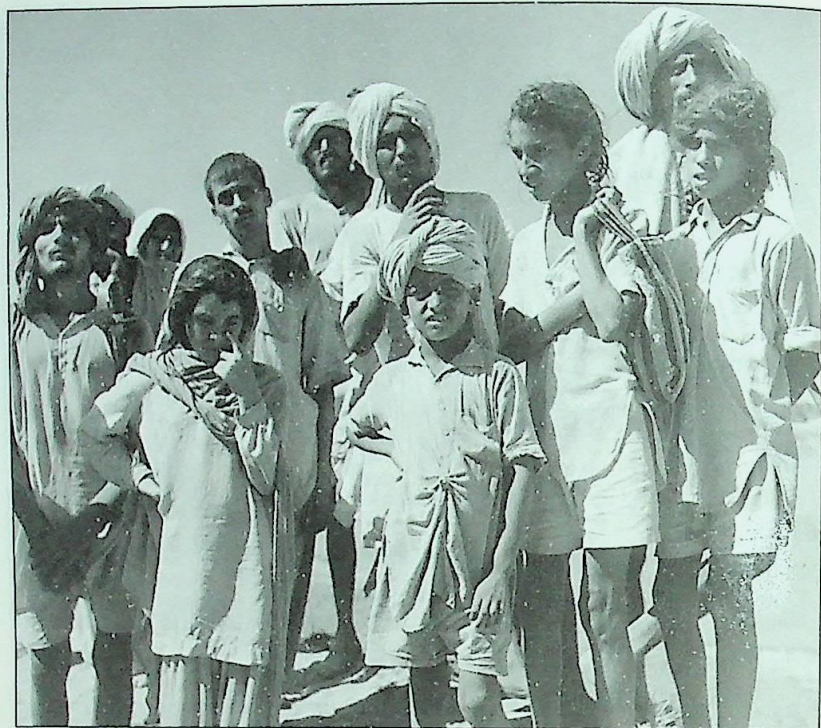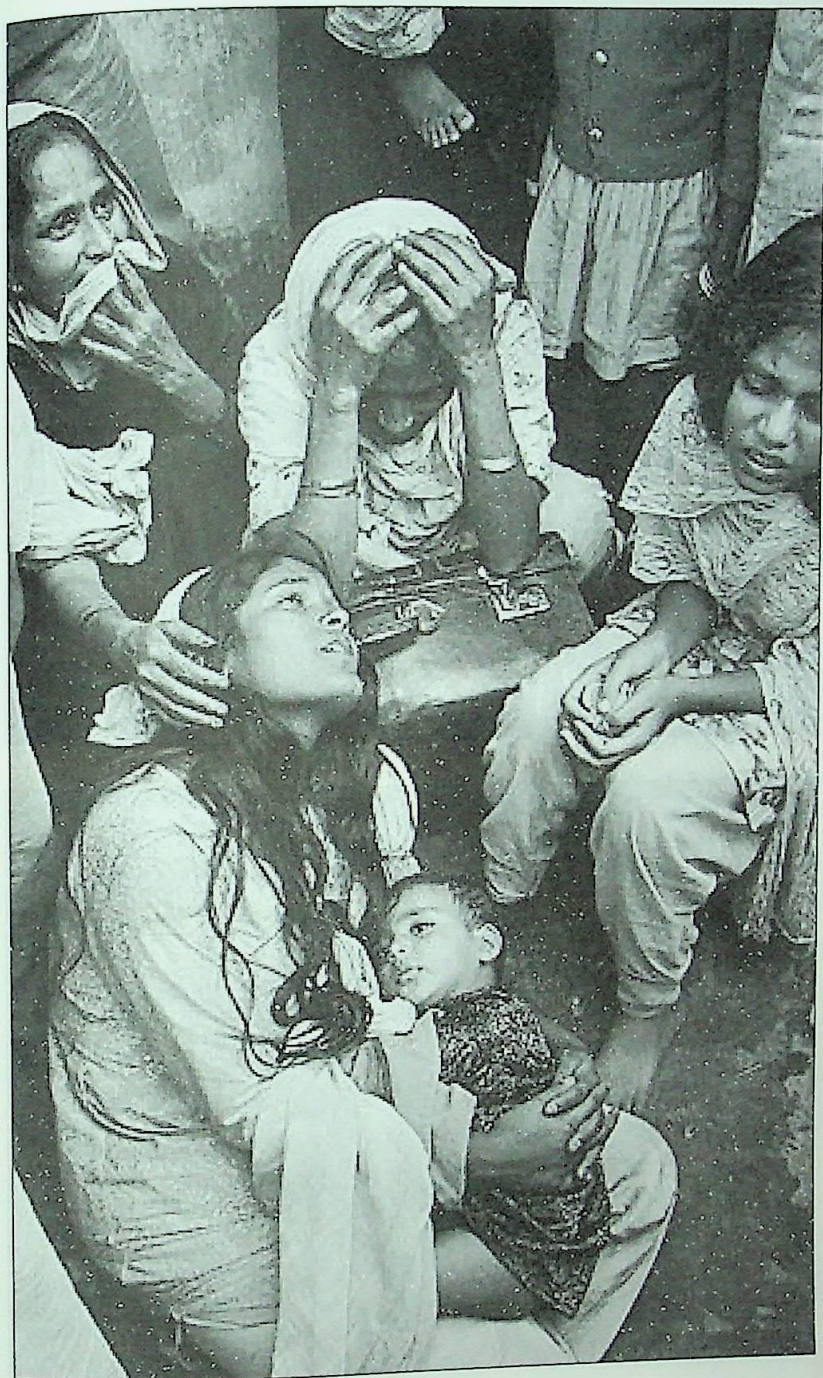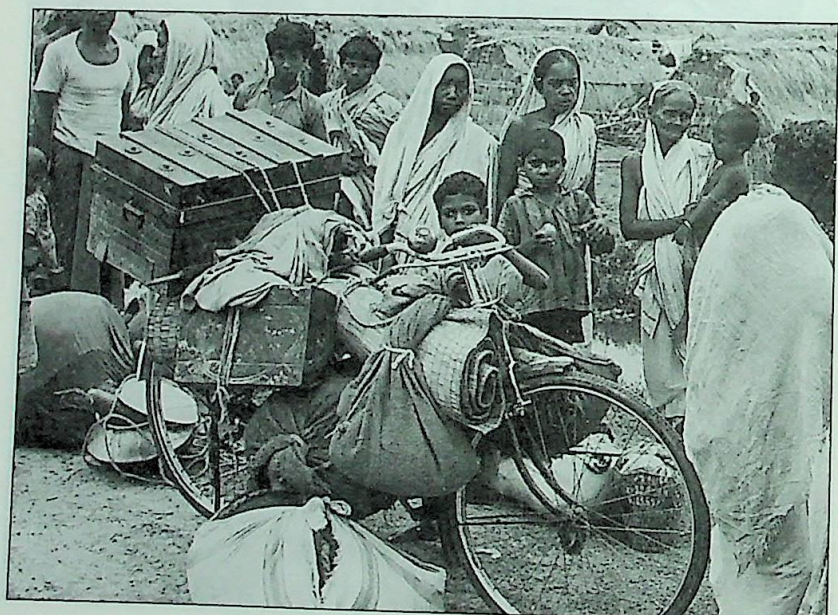
कुछ भी हो जन्म भूमि तो नहीं है

कदमों के नीचे जमीन के खिसकने में और जीवन के प्रति विश्वास गिरने में क्षण मात्र का समय लगता है अधिक कुछ करना भी नहीं पडता है। किसी के घर में घुस कर हमारे जीवन में कुछ दखलंदाजी करना ही बहुत है। जिंदगी, जिंदगी जैसी नहीं रहती है। ईश्वर हर जगह है, यह यकीन भी डगमगा जाता है। जतन से पकाए हुए भोजन को आगे –पीछे देखे बिना फेंक देना, घर की जवान लड़कियों को उठा कर ले जायें, क्या हाल होगा। तब जीने की एक छोटी–सी आशा भी नहीं बचती। ऐसी ही परिस्थिति का सामना कर आँखों में अत्यधिक भय भर अम्मा –बाबा का हाथ थामें दस वर्श की आयु में भारत भाग आई थीं लक्ष्मी मल्लिक। उनकी यादों की गलियों में उनके अपने गाँव की सुंदर तस्वीरे हैं। खेल–कूद कर बिताए उस विशाल पेड़ की ठंड़ी छाँव है। नदी के ठंड़े पानी का सुखद स्पर्श है। "मेरी जन्म भूमि" रूँधे कंठ से धीमी आवाज में कहकर, बात करने लगी लक्ष्मी। उस दिन जब हमने अपनी जन्म भूमि को छोड़ कर भारत जाने का निर्णय लिया था उस दिन हश्नावाद के हमारे घर में मुसलमानों ने घुस कर माँ के पकाए भोजन को जमीन पर फेंक कर रौंद डाला,

विरोध करने से हम पर अमानुशिक अत्याचार किए। शिशु को दूध पिलाती हुई मेरी दीदी को गोली मार दी। ''बहुत अत्याचार किए वो लोग'' कांपते हुए स्वर में पुरनी यादों के पन्ने पलटने लगी लक्ष्मी।

दिन–ब–दिन उनके अत्याचार बढते ही जा रहे थे। इनकी–उनकी कहानियाँ सुनकर भयभीत रहते थे। पर जब हमारी ही घर में घुस गये तब अब बचना मुश्किल है सोच कर पलायन की तैयारी करने लगे। अपना सब कुछ छोड़ कर जाना आसान तो नहीं है, है न? पर रहना चाह कर भी तो नहीं रह सकते हैं और ये आसानी से जाने भी नहीं देते। दिन के उजाले में सब कुछ बाँध कर निकलना असंभव ही था और यदि सुंदर लड़की साथ में हो तो और मुश्किल। मेरी दीदी को पहले ही गोली मार दी गई थी उसका दुःख तो था ही अब माँ–बाबा मुझे खोना नहीं चाहते थे। इस कारण रात के अंधेरे में निकलना तय किया। अंधेरी रात में बंगाल के बाहरी किनारे से भारत के ओर जाने के लिए चार नाव तैयार खड़ी थीं। हमने पहले ही तय कर लिया था इस कारण थोड़े पैसे थोड़े जरूरत के सामान कपड़े सभी लेकर हम नदी के किनारे आ पहुँचे। गोदी में दीदी का शिशु मां की मौत से बेखबर गहरी नींद सो रहा था। दीदी दुपहर में ही अपने बच्चे को माँ की गोदी में डाल कर चिर निद्रा में सो गई थी। दुःख के उठते हुए उफान में '' बरबाद'' कह आह भर कर नाव चढने ही वाले थे कि कहीं से एक बड़ा समूह आ धमका। पहले से ही भयभीत हमें अब डरने जैसा कुछ नहीं था। जो आए उन्होंने अक्षरशः हमारे पहने कपड़ों को छोड़ कर सब कुछ लूट लिया। कल तक स्वर्ग से सुंदर जिंदगी व्यतीत करने वालों को नरक के दर्शन हो गए। अब कुछ भी हो जाए यहाँ तो नहीं रहना है सोचकर मैं, माँ, बाबा, और चारों भाई नाव चढ़ कर बैठ गए। हमारी नाव के साथ ही और तीन नावें उस पार जाने के लिए तैयार खड़ी थीं। अंधेरे में नाव थोड़ी दूर ही गई होगी कि एक जोर का कोलाहल उठा। क्या हुआ होगा समझ आने तक मुसलमानों ने एक नाव को उलट दिया। मौत की वह चीख –पुकार अभी तक कानों में गूँज रही है, कहते समय लक्ष्मी की आँखें उस से भी भयानक दृश्य को देख रही होंगी, ऐसा लग रहा था।

इस पार आकर 43 साल बीत गए फिर से उस पार नहीं गए। उस दिन से भारत माँ ही मुझे पालने वाली माँ है। जब खाली हाथ असहाय होकर आये तब सबसे पहले हमारा आश्रय बना मधय प्रदेश का माना कैंप। वहाँ आने के बाद दीदी का नवजात शिशु नहीं रहा। दुःखों को भी दुगना होने की चाह थी

षायद। पाँव के नीचे की जमीन हमारी नहीं थी, लेकिन जीव भय नहीं था यही एक सबसे बड़ा समाधान था। माना कैंप में ही दिन बीतने लगे। माँ,बाबा को जिंदगी सँवारने की जिद थी तो माँ धीरे धीरे कुछ घरों के काम करने लगी। बाबा भी मजदूरी करने लगे। मेरे हाथ– पैरों में भी ताकत थी तो मैं ने भी कुछेक घरों में बर्तन धोएं। माना कैंप में ही चार साल बीत गए। भाई कोलकत्ता में रिश्तेदारों के घर जाकर अपनी राह ढूँढने के फिराक में थे। सरकार ने माँ, बाबा को दण्डकारण्य में जमीन दी। इतने में ही हमारे ही गाँव के निरुपद मल्लिक के साथ विवाह का प्रस्ताव आया। वे भी हमारी ही तरह हमारे हश्नावाद से भाग कर आए हुए थे। उनका घर हमारी जमीन के किनारे ही था। अब वे भी माना कैंप में ही थे। माँ, बाबा को लगा होगा, मेरा विवाह हो जाए तो आध ी जिम्मेदारी आधी चिंता सब दूर हो जाएगी। निरुपद जी के साथ मेरा विवाह हो गया तब मेरी उम्र केवल 15 वर्श की थी। विवाह के बाद मैं सिंधनूर आ गई। उधर माँ –बाबा और भाई दण्डकारण्य के धूप को न सह पाने के कारण वहाँ भी सब छोड़ कर कोलकत्ता में आ बसे। सिंधनूर आने के बाद मेरा संसार ही अलग हो गया। सरकार ने इधर–उधर जमीन देकर हमारे सारे परिवार को छिन्न–भिन्न कर दिया। कहाँ सिंधनूर, कहाँ कोलकत्ता, और कहाँ हश्नावाद। फिर भी जीवन को तो चलना ही है न। सिधंनूर में ही दाँत काट कर 11 साल बिता दिए। माँ का चेहरा तक नहीं देखा। जी हाँ 11 साल हो गए हैं माँ को देखे।

सिंधनूर आने के बाद हमें मिलटिरी कैंप में जगह मिली। पहले ही बहुत तेज धूप भीशण गर्मी उस पर साँप बिच्छू का डर। कितने ही लोगों की भीशण गर्मी के कारण मौत हो गई। और कुछ लोगों की साँप –बिच्छू के काटने से मौत हो गई। हर दिन मौत से मुलाकात। उस एक दिन हश्नावाद घर के आँगन में षुरू हुआ मौत का रुद्र नृत्य सिंधनूर आने के बाद भी अभी तक बंद ही नहीं हुआ था। मौत को तृप्ति मिलने में वर्शों लगते हैं षायद। सबसे अधिक असुरक्षा का भय सताता था। मेरा क्या है? ऐसी असहाय स्थिति। इन सभी के साथ ही जीवन बीतने लगा।

•

वहीं एक दिन दूर देश में रहनेवाली बेटी को देखने की तीव्र ललक से माँ ट्रेन से कर्नाटक आ गईं। लेकिन वे मैसूर आकर उतरीं। मैसूर से सिंधनूर

कितनी दूरी पर है यह जानकारी भी उनको न थी और न उन्हें कन्नड़ भाशा आती थी। जिस किसी से भी पूछने पर इनकी भाशा उन्हें समझ में नहीं आती थी। इसी हडबड़ी में साथ लाए धन की भी चोरी हो गई।

आखिरकार किसी पुण्यात्मा ने एक चिट पर – सिंधनूर में अपनी बेटी के घर जाना है हाथ में पैसे नहीं है कृपया सहायता करें – लिख कर दिया। उसे ही दिखा –दिखा कर बेटी के पास आए। अंत में माँ बेटी का मिलन हुआ।

परंतु बेटी के घर सिंधनूर की परिस्थिति देखकर माँ की आँखों में आँसू आ गए। हमारे देश में कितनी सुविधायें थीं कितना समृद्ध था। तुम इस सूखे प्रदेश में कैसे जीवन बिताओगी कहकर रो पड़ी थी। लेकिन लक्ष्मी जी ने – यहाँ का वातावरण, लोग सभी बहुत अच्छे हैं। सरकार ने जमीन दी है। हम आराम से हैं, कहकर उन्हें सांत्वना दी।

ये लो बस अपना ही कहती रही मैं, रुकिए, सुख और दुःख में इतने साल तक कंधे से कंधा मिलाकर रहने वाले " उनके" विशय में भी कुछ कहती हूँ। परंतु उनकी कहानी उन्हीं की जुबानी सुनिए। (उनकी कहानी अगले अध्याय में है)

13

स्वदेश में ही परदेशी हुए

मेरा नाम निरुपद मल्लिक है। हम पहले इसी देश में रहते थे अर्थात भारत ही हमारा देश था। हम जहाँ रहते थे वह भारत का ही हिस्सा था। भारत वर्श कहकर पुकारते थे। हम ने भी स्वतंत्रता के लिए संघर्श किया। किसी की आकंक्षाओ के कारण देश का विभाजन किया गया। देश बंट गया। रात की कालिमा छंट कर सुबह की लाली फैलते ही हमारा प्रदेश भारत न रहा पाकिस्तान हो गया। वहाँ से हमें, इस देश के नहीं है कहकर भगाया गया। आश्रय, सुरक्षा की चाह में भारत आये तो हम शरण ाार्थी बन गये। स्वतंत्रता के लिए संघर्श किया तो भी हमें स्वतंत्रता नहीं मिली। सभी स्वतंत्रता मिलने की खुशी मना रहे थे पर हम जैसे ष्मशान में हो ऐसा आभास हो रहा था। निरुपद मल्लिक भारी आवाज से बोल उठे।

वहाँ हमारे परिवार के पास 200 एकड़ के बराबर जमीन थी। हम बहुत ही आरामदायक जीवन व्यतीत कर रहे थे। स्वतंत्रता मिलेगी इस खुशी में थे।। स्वतंत्रता तो मिली पर हमें क्या मिला? सोचें तो, यदि स्वतंत्रता न मिलती तो अच्छा होता, ऐसा लगता है। स्वतंत्रता के मिलते ही हमारे पास देश ही नहीं रहा। देश बंट

कर पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान का उद्भव हुआ। उसे मुस्लिम राश्ट्र कहकर घोशित किया गया। उस दिन से सर्वत्र हिंसाचार, उपद्रव, मार–काट, लूट मार। एक साथ जीने वाले एकदम से बैरी हो गये।

ऐसा नहीं है कि हम असहाय होकर तुरंत चले आए। पश्चिमी पाकिस्तान के कुल्मा जिले में हमारा परिवार था। स्वतंत्रता के मिलते ही हमारे प्रदेश में अधिक खलबली या भय का वातावरण नहीं था। फिर भी दूसरे स्थानों पर हो रही घटनाओं के विशय में रेडिओ से पता चल ही जाता था। दिन बीतते–बीतते मुसलमानों का उपद्रव बढता ही जा रहा था। घर –घर जाकर धन की वसूली करना, खड़ी फसल को चुराकर ले जाना आदि करते थे। उनके विशय में पुलिस में शिकायत करें तो '' रात में जब चुराने आये थे तुम सब क्या कर रहे थे उठ कर उनका सामना करना था उन्हें रोकना था '' यही उत्तर मिलता था। क्योंकि सभी मुसलमान ही तो थे। सभी कुछ उनकी मर्जी के अनुसार ही चलता था।

ऐसी स्थिति में बहुत दिनों तक जीवित रहना संभव नहीं था। पर घर, जमीन, सभी को छोड़ कर जाना भी तो संभव नहीं था। भारत ही जाना था और कहीं भी नहीं जा सकते थे। पर भारत में हमारे लिए क्या था? वहाँ जाकर क्या करें? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। परिस्थितियों के सही होने के कोई आसार नजर ही नहीं आ रहे थे। वरना और बिगडते ही जा रहे थे। उसी समय भारत सरकार ने, पाकिस्तान में जीवन निर्वाह करना संभव नहीं है, सोच कर आने वाले हिंदुओ को सभी सुविधायें देने का आश्वासन दिया।। आखिर में अब संभव ही नहीं है तब माँ–बाबा, दो भाई और एक बहन घर छोड़ कर चले। वहाँ से हम सीधे भारत की सीमा तक नहीं जा सकते थे। इस तरह कोई जाता हुआ दिखाई दे तो उसे पूरी तरह से लूट लिया जाता था। लड़कियों को उठा कर ले जाते थे। इस कारण किसी को दिखाई दिए बिना जाना था।

किसी तरह हम पश्चिम बंगाल के सीमावर्ती गाँव में पहुँचे। वहाँ से हमें बिहार के, आज के झारखंड़ के एक भाग में बने एक कैंप में स्थानांतरित किया गया। वहाँ केवल 17 दिन तक ही थे। हमें केवल बंगाली आती थी। बिहार से हमें मध्यप्रदेश के माना कैंप में स्थानांतरित किया गया। वहाँ हमने साढ़े चार साल बिताए। हिंदी नहीं आती थी उसी समय मैंने थोडी–थोड़ी हिंदी सीखी। वहीं मैंने पी.यू. सी की पढाई भी पूरी की। अब मध्यप्रदेश में ही सारी जिंदगी गुजारनी होगी, यह तय ही किया था कि तभी कर्नाटक में हमें जमीन दी गई

है, यह समाचार मिला। वहाँ से हमें सिंधनूर के कैंप में भेजा गया। यहाँ हमें घर बनाने के लिए और खेती करने के लिए पाँच एकड़ की जमीन दी गई। 200 एकड़ जमीन के मालिक थे हम अब केवल पाँच एकड़ जमीन से संतोश करना पडा।

यहाँ की भाशा भी नहीं आती थी। भू प्रदेश भी एकदम नया था। बाजार से खरीदारी करते समय कैसे बात करें? क्या कहें? कुछ भी पता नहीं था। यहाँ के लोगों को बंगाली नहीं आती थी। हमें उनकी भाशा और उन्हें हमारी भाशा नहीं आती थी, संकेतो से ही बात करते थे। आज यहीं दुनिया बसा ली है।

फिर भी कभी–कभी अपने ही देश में हम परदेशी हो गए ऐसी भावना कचोटती है। देश की नागरिकता पर हमारा हक था। क्योंकि हम भी आप जैसे ही हिंदु और इसी देश में जन्मे थे। लेकिन राजनीती के खेल में फंस कर हम कौन हैं? कहां के हैं? सिद्ध करना ही जीवन का एक सवाल बन गया। हमें षरणार्थी कहकर पुकारने पर दुःख होता है। हम यहाँ नहीं आते तो कहाँ जाते? हम भी कृशण की ही पूजा करते हैं, आप भी कृशण की पूजा करते हैं। आप भी राम जी को मानते हैं, हम भी राम जी को मानते हैं। फिर हम कैसे बाहरी लोग हो गए।

निरुपद मल्लिक को नागरिकता प्रदान कर, आप भी हमारे अपने हैं, उत्तर दिया जा चुका है। यह समाधान है। लेकिन उनकी परेशानी के लिए उनके मान–सम्मान के अपमान के लिए कौन जिम्मेदार है? किसे दोश दे? पता नहीं

14

सूचित कर लूटने आते

पूर्वी पाकिस्तान जहाँ हम बसे थे वह सुख षांति का मायका था। कोई किसी से भी द्वेश नहीं रखता था। अपने–पराए का भेदभाव भी नहीं था। परंतु स्वतंत्रता के पश्चात पूर्वी पाकिस्तान इस तरह बदला कि, क्या यही है हमारी मातृ भूमि? क्या यहीं हम इतने वर्शों से जीवन बिता रहे हैं? हमें ही यह संदेह होने लगा। हम कल्पना भी नहीं कर सकते इस कदर वहाँ का चित्र बदल गया। हमारे जीवन में एक ऐसा दिन भी आ सकता है जब हम अपनी मातृ भूमि और अपना घर –बार सब छोड़ कर पलायन कर जायेंगें, ऐसा हमने सपने में भी नहीं सोचा था। हिंसाचार, ६ ाोखाघडी, विश्वासघात के दुःख से जर्जर होकर हम भारत आए।

यह अनाथ बंधु ड़े जी की दर्दनाक आवाज थी।

हमारे राज्य (कर्नाटक) सिंधनूर में बसे बांग्ला षरणार्थियों में अधिकतर लोग कुल्मा जिला या उसके आस–पास के हैं। वो सभी भारत में पश्चिम बंगाल की सीमा से प्रवेश किए हैं। परंतु अनाथ बंधु ड़े चिटगाँव जिले से हैं। इन्होंने ईशान राज्य त्रिपुरा कि सीमा से भारत में प्रवेश किया है। हालांकि पूर्वी पाकिस्तान से ही ये भी
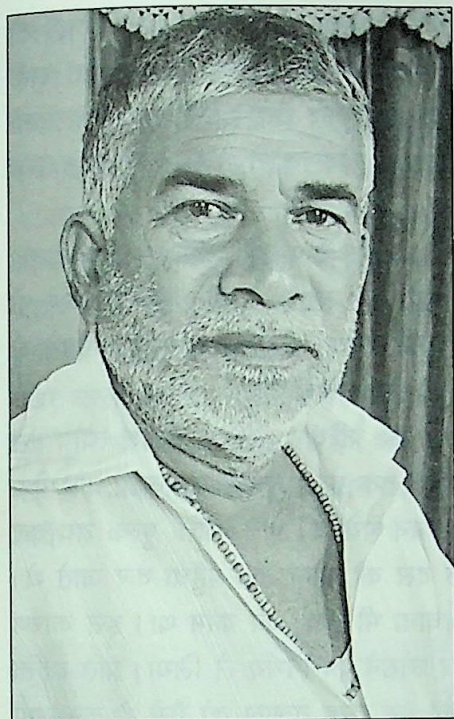
आए हैं परंतु इनकी कहानी थोड़ी अलग है। एक अलग तरह से ही इन्हें धोखा दिया गया है।

अनाथ बंधु ड़े के परिवार के पास 5–6 एकड़ का बाग था। मध्यम वर्गीय परिवार परंतु इन्हें शिक्षा के उचित अवसर प्राप्त नहीं हुए। क्योंकि पाठशाला घर से बहुत दूर था। अब ऐसी स्थिति में लडकियाँ तो पाठशाला जा ही नहीं सकती थीं। क्योंकि मुसलमान बहुत तंग करते थे। बलात्कार और अपहरण का भय भी था, इस लिए लड़कियों को पाठशाला में भेजा ही नहीं जाता था।

इनके गाँव में और आस–पास के गाँव में डकैती, लूट–पाट, चोरी की वारदातें बहुत अधिक होती थीं। इसी कार्य के लिए कुछ समूह भी बने हुए थे। जिन का हिंदुओं के खेत में खड़ी फसल को चुराना ही प्रमुख कार्य था। वहाँ का प्रशासन और या वहाँ की पुलिस कोई कार्यवाही नहीं करती थीं। इससे कुछ और लोग इस तरह के कार्य करने के लिए प्रोत्साहित होते थे। हिंदु जब अपनी फसल बेचने जाते तो बहुत कम दाम देते थे। पूछने पर " इतना ही मिलेगा चाहिए तो लो वरना जाओ" कहते थे। वापस ले जाना चाहें तो राह में लुटने का डर। ऐसे में जो वो दें उतना ले लेने में ही भलाई समझते थे।

इसी तरह बढ़ते–बढ़ते हफ्ता वसूली दल बनने लगे। किसी गाँव में किसी निश्चित दिन आने से पहले एक चिट भेजी जाती थी। निश्चित रकम चुकाने की सूचना भी दी जाती थी। उससे दो दिन पहले या पिछली रात को बंदूक धारी दल गाँव में प्रवेश करता था। पहले से ही चिट में लिखी रकम की अदायगी की जाए तो ठीक नहीं तो घर में घुस कर तोड़ –फोड़ करना, मारना–पीटना, घर के सामान को फेंकना और चूल्हे पर रखे भोजन को फैला

देना ये सब आम बातें हो गई थीं। विरोध करने जाएं तो मार डालते नहीं तो बच्चों की गर्दन पर चाकू रख कर डराते थे। घर में रखे धान सहित सभी सामान ले जाते और घर में सब तोड़ –फोड़ कर जाते। इस तरह मुसलमानों के आ कर जाने के बाद हमें घर फिर से ठीक करने में दो–चार दिन लग जाते।

चिठ्ठी के मिलते ही सारा गाँव डर का मुँह ढ़ांप कर दुबक कर सो जाता। ऐसा नहीं था कि हम उनका सामना नहीं कर सकते थे परंतु सामना करने के लिए जाओ तो उनकी बेहद क्रूरता से डर लगता था। इस कारण चुप रहने के सिवाय कोई और रास्ता नहीं था, कहते हैं अनाथबंधु ड़े।

जब सहन षीलता का घड़ा भर गया तब परिवार वालों ने स्वदेश त्याग कर भारत जाने का निश्चय किया। इस समय तक पलायन कर जानेवालों को सीमा तक पहुँचाने के लिए दलालों के दल बन गये थे। प्रति व्यक्ति षुल्क तय कर लिया गया था। इस तरह एक –एक दल को सीमा तक पहुँचा कर जाते थे। राह में होने वाली चोरी, डकैती से बचाना भी उन्हीं का काम था। इस कारण एक दलाल को तय कर हमने भी घर छोडने का निर्णय ले लिया। प्रति व्यक्ति 60 से 80 रूपए तक तय किया गया। इस तरह दलाल को पैसे दे कर सभी व्यवस्था कर हम सब भारत की ओर निकले। दो दिन की यात्रा के बाद हम सीमा तक पहुँचे। वहाँ से भारत की सीमा तक पहुँचना था। सीमा के पास सीमा को पार करने वालों को लूटने के लिए अनेक दल तैयार खड़े रहते थे। इस कारण रात होने के बाद हम निकले और लगभग आठ घंटे चलने के बाद अब जब सीमा में प्रवेश करना ही था तब दलाल ने एक नया पैंतरा चला।

जब आप सीमा प्रवेश करेंगे तब आप की तलाशी ली जाएगी तब आप के पास जो कुछ गहने –पैसे हैं उन्हें छीन लिया जाएगा। इस कारण आप सभी अपसने धन, गहने जेवर जो भी है मुझे दे दें मैं दूसरे चोर रास्ते से उनसे छिप कर आकर आप को सब दे दूंगा। आप सब सीमा पार करने के पश्चात वहाँ एक विशाल पेड़ है, आप सब वहीं रुके, ऐसा उसने कहा। दो दिन से साथ चला, हमें चोरी–डकैती से बचाया, हमें सीमा पार करा कर दूसरी सीमा तक पहुँचाने वाले का विश्वास न करें तो क्या करें। हम सभी ने अपना सब धन, गहने, जेवर उसके हाथ थमा दिया। एक प्रकार से हम सब सामान उसे थमा कर असहाय हो गए थे, पर क्या करते? सीमा पार भारत में प्रवेश कर हम उस

विशाल पेड़ के नीचे आ कर ठहरे। धन – संपदा सुरक्षित ले आऊंगा ऐसा कहने वाला आया ही नहीं। इंतजार करते– करते, जब वह नहीं आयेगा उसने धोखा दिया है, यह विश्वास हुआ। तब सब कुछ खोकर दुःखी मन से हम सभी ने निराश्रितों के शिविर की तरफ कदम बढाया।

आज भी मातृ भूमि का वह घर याद आता है। अभी की जमीन से तुलना की जाए तो वह और समृद्ध थी। कुछ भी यूँ ही फेंक भी दिया जाए तो भी उग जाता था। सिंधनूर में जब हम आए थे तो यहां केवल जंगल और भूमि बंजर जैसे थी। बहुत ही उपजाऊ हरी–भरी भूमि को छोड़ कर आए, हमें यह कहाँ बंजर धरती पर आ गए लगता था। परंतु बाद में सिंचाई योजनाओं के कारण यह भूमि भी उपजाऊ हो गई है। चौन से जी रहे हैं। बच्चे भी उद्योग में लग गए है। अब नागरिकता संशोधन अधिनियम आने के बाद और अच्छे दिन आयेंगे।

15
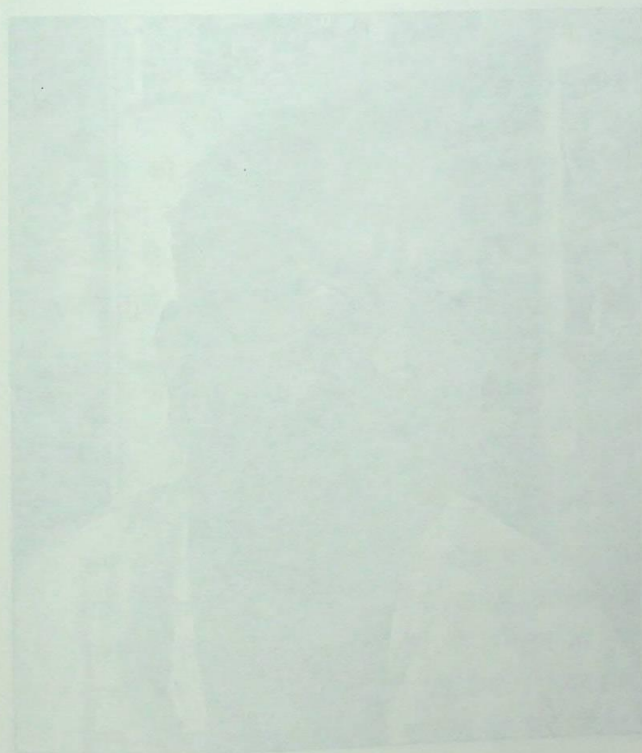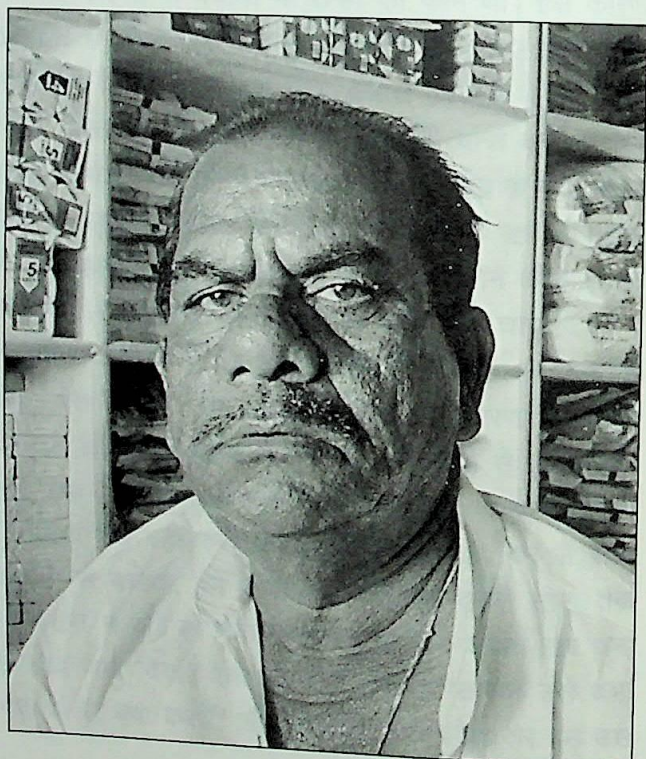
नदियों का रंग ही बदल गया था

घर से निकलते समय, माँ और दादी हम नहीं आयेंगे कह कर घर के अहाते में लगे खंभे को पकड़ कर रोने लगी थीं। वह दृश्य आज भी आँखों के सामने ही है। पिताजी ने उन दोनों को सांत्वना दी, यहाँ रहने से जीवित रहना मुश्किल हो जाएगा कहकर जबदस्ती उन्हें वहाँ से ले कर चलें। 49 वर्श बीत जाने के पश्चात भी उस दृश्य को भूलना संभव नहीं है। जीवन भर मुझे वह कचोटता ही रहेगा, कहते हैं सुनील मेस्त्री। अपनी बात कह कर आधे मिनट के लिए मौन हो गए।

जमीन जायदाद छोड़, बंगाल से भाग कर आने के बाद चौन की जिंदगी मिले तो बस। नमक मांड़ पीकर भी जी लें बस, ऐसी परिस्थिति के लिए भी तैयार थे। और आज यहाँ के ग्राम पंचायत के सदस्य के रूप में चुने गये हैं। राजनीती में छोटे सरदार के रूप में खड़े हो गये हैं। सरकारी काम–काज की जानकारी और ग्राम पंचायत के सदस्य होने के कारण बांग्ला निराश्रितों की सरकारी नियमों से संबंधित कोई भी समस्या हो लोग इन्हीं के पास आते हैं। कई षरणार्थियों की इन्होंने मदद की है। बिना जान–पहचान, किसी अनजान षहर में आ कर जीवनयापन करने

लगे हैं। यहाँ के प्रभावी व्यक्तियों से भी गहरी जान–पहचान बढा ली है। फिर भी मातृ भूमि छोड़ कर आते समय का दृश्य सुनील मेस्त्री के स्मृति पटल से अभी भी धूमिल नहीं हुआ है। उन दिनों की कहानी कहते समय उनकी आवाज रूँध जाती है। जबान लडखड़ा जाती है। उनके मन का भावोद्वेग उनकी बातों में स्पश्ट होता है।

बहुत कश्ट उठायें हैं सर ... स्वतंत्रता के पश्चात हुए हिंसाचार से हम उतने बाधित नहीं हुए थे। सब ठीक ही चल रहा था। लेकिन पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान के मध्य जब तनाव बढा तब हमें भी समस्या होने लगी। पश्चिमी पाकिस्तान में हिंदुओं पर हिंसाचार होने लगे। परंतु पूर्वी पाकिस्तान में उतनी समस्या नहीं थी।

हमारे परिवार वाले वहाँ के स्थानीय जावेद अली की जमीन भी जोतते थे। धीरे–धीरे मुसलमानों की दखलंदाजी बढने लगी। फसल काट कर ले जाते थे।

राजनीतिक कारण भी थे

सुनील मेस्त्री के अनुसार पूर्वी पाकिस्तान में मुसलमान के हिंदुओं के विरोध में खड़े होने का एक राजनीतिक कारण भी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान का निर्माण किया गया। पूर्वी पाकिस्तान ही आगे बांग्लादेश बना। विभाजन के समय पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या पश्चिमी पाकिस्तान से अधिक थी। इतना ही नहीं पूर्वी पाकिस्तान में मुस्लिम बंगाली भाशा बोलते थे। ऐसी स्थिति में यदि चुनाव हुए तो पूर्वी पाकिस्तान का प्रभाव अधिक होगा ऐसी संभावना अधिक थी। और साथ में पूर्वी पाकिस्तान में मुजिबर रहमान हिंदुओं के पक्ष में ही बात करते थे। हिंदु–मुसलमान अलग नहीं है हम बंगालियों के लिए अलग से देश की मांग करेंगे। कहा था उन्होंने। वे बंगाली बात करने वालों को साथ ले कर एक अलग से राश्ट्र बनाने चले थे। पश्चिमी पाकिस्तान के मुसलमानों को यह बात अच्छी नहीं लगी। वे पूर्वी पाकिस्तान में रहने वाले हिंदुओं पर अत्याचार करने लगे। स्थानीय मुसलमानों को भडकाया। आखिर में मुजिबर रहमान जी पर भी आक्रमण कर उनके परिवार वालों की हत्या कर दी। यह सब उस समय के पाकिस्तान की राजनीतिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न स्थितियाँ हैं। ऐसा मेस्त्री जी का अभिप्राय है।

यह रामराज्य है

हम जब कर्नाटक में आये थे तब हमें यह परदेश ही लगा था। यहाँ की भाशा, संस्कृति, खान–पान सब अलग था। हमें रोटी बनाना भी नहीं आता था। हमारे उपयोग करने वाली अनेक वस्तुएं यहाँ मिलती भी नहीं थीं। परंतु यहाँ के लोग बहुत अच्छे हैं। इन्होंने हमें कभी तंग नहीं किया। यहाँ एक जून खाना मिलने पर भी चौन की जिंदगी जी रहे हैं। इसी लिए हम सभी को यहाँ जीवनयापन करना सरल हुआ। सच कहें तो यहाँ राम राज्य है। हम उत्तर भारत सभी स्थानों पर घूम रह आयें हैं पर यहाँ जितनी षांति और सुख और कहीं नहीं है।

यहाँ के लोग में विरोध नहीं है ऐसा नहीं है। लेकिन विरोध को द्वेश में परिवर्तित नहीं करते। विरोध के दरम्यान जीना यहाँ के लोगो का बहुत बड़ा गुण है। अलग –अलग पक्ष के हो भी तो भी हमारे काम को कर देते हैं।

राह चलते समय रोक कर नारियल पानी काट कर देने को कहते और दाम भी नहीं देते। उनसे प्रश्न भी नहीं पूछ सकते थे। एक दिन तो दो मुसलमान घर के अंदर आकर अभी काटने के लिए चाहिए कहते हुए हमारे घर के पीछे बँधी दो भेंड़ों को खोल कर ले गए। पूछा तो बोले– तुम लोग हिंदू हो यहाँ क्यों रह रहे हो अपने देश जाओ। यहाँ रहना है तो चुप रहो।

आरंभ में इन सभी बातों को जावेद अली को बताने पर, उसने गलत काम करने वालों को बुला कर चेतावनी दी और आइंदा ऐसा ना करने की भी चेतावनी दी। दिन बीतते अत्याचार और हिंसाचार बढ़ते गए। एक दिन हमारे गाँव से ही दो लोगों का अपहरण कर हत्या कर दी। उनकी जमीन उनके घर पर कब्जा कर लिया। कुछ मुसलमान पानी पीने के बहाने घर के अंदर आते और घर में कौन–कौन है? कितने लोग हैं? क्या सामान है? सब देख जाते। एक दिन हमारे गाँव के बाहर की जूट फैक्टरी में काम करने वाले सभी लोगों को बाहर भेजकर फैक्टरी में आग लगा दी। जिस से कई लोग बेरोजगार हो गए।

जमींदार जावेद अली ने हमें बुला कर कहा– अब यहाँ की परिस्थिति हद से अधिक बिगड़ने लगी है। अब आप लोगों का यहाँ रहना ठीक नहीं है। उसी

समय कंटोलमेंट प्रदेश में 400 हिंदुओं को कतार में खड़ा कर के गोली मार दी गई, खबर आई। उस के बाद जगह–जगह हिंदुओं पर अत्याचार, हिंसाचार, हत्या आदि की खबर से हमारे मन में भी भय बढ़ने लगा था। भय से ही हम ने भी भारत जाने का निर्णय लिया।

जावेद अली को हमने अपनी सारी जमीन बेच दी। उस साल जितनी भी फसल हुई है उसका कुछ दाम मुझे नहीं चाहिए जावेद अली ने कहा। तब जमीन और फसल बेच कर सारी रकम हमने जावेद अली को दिया। उसने हवाला (हुण्डी) के द्वारा सारी रकम को भारत भेजने की बात कही।

अपने ही आदमियों को कहकर उसने हमारे निकलने की सारी व्यवस्था करवा दी। हम एक दिन रात को नाव द्वारा निकलने के लिए तैयार हो गए। लेकिन मेरी माँ और दादी जन्म भूमि को छोड़ कर जाने को तैयार ही नहीं हुए। अंजानशहर जा कर और जान –पहचान के बिना लोगों के बीच जाकर भी क्या करेंगे। आगे का जीवन कैसे होगा कहकर खंभे को पकडकर रोने लगी। वे दोनों वहाँ से चलने को तैयार ही नहीं थीं। पिताजी को उन्हें समझाकर ले चलने में जमीन–आसमान एक करना पडा।

किसी को भी घर–जमीन छोड़ कर चलने का मन नहीं था। लेकिन वहाँ रहना भी मुमकिन नहीं था, पिताजी समझ गये थे। कुछ भी गलत होने से पहले वहाँ से निकलना ही होगा। परिवार वालों की सुरक्षा ही पिताजी का उद्देश्य था। इस कारण उन्होंने सारी तैयारी कर ली थी। नाव से निकल कर थोड़ी दूर जाने के बाद एक और परिचित परिवार वालों को साथ लेकर 10 कि.मी. की दूरी पर एक सुरक्षित स्थान पर हम 10 दिनों तक ठहरे। वहाँ से कुल 29 परिवार वाले साथ निकले।

हम सीमा के पास से थोड़ी दूरी पर रुके हुए थे। उस रात 15 मुसलमान हाथों में मारकास्त्र लेकर उस जगह पर आ धमके। हमारी तलाशी लेने की जबरदस्ती करने लगे। तब बड़ा झगड़ा ही हुआ। हमारे कुछ लोग घायल हुए। 15 मुसलमानो में कुछ लोग भाग गये। उन में से हमने पाँच –एक लोगों को पकड़ लिया। उसके बाद हमने उन्हीं से अपने सामन को उठवा कर भारत की सीमा तक गए।

भारत की सीमा में प्रवेश करने बाद हम एक बड़े से इमली के पेड़ के नीचे करीब 20 दिन तक रुके। उसी समय जावेद अली के द्वारा भेजा हुआ पैसा आ पहुँचा। इस समय हमारे साथ के एक साथी को गाँव में एक मुस्लिम के द्वारा

पैसे मिलने थे। उसे लेने के लिए वे फिर से पूर्वी पाकिस्तान को गए। लेकिन पैसे मिलने के बजाए उनकी हत्या कर दी गई, खबर मिली।

हमको रिलीफ एलिजिबलिटि सर्टिफिकेट दिया गया। वहाँ से हम मध्यप्रदेश के रायपुर जिले में बने निराश्रित शिविर में गए। वहाँ कृशक और कृशितेर का विभाजन किया गया। कुछेक को ओडिसा, उत्तरप्रदेश आदि स्थानों में भेजा गया। ओडिशा के दण्डकारण्य में अनेक लोगों की मृत्यु हो गई। हम सब लोग यहाँ आ गए।

पाकिस्तानी अपने देश को जाओ। यह तुम्हारा देश नहीं है कहते थे। हमारे पास भी दूसरा कोई विकल्प नहीं था। कहीं और जाने की भी क्या संभावना थी? हमारे पास भारत आने के सिवा और कोई विकल्प नहीं था। बांग्लादेश या पाकिस्तान में हिंदुओं पर अत्याचार बंद नहीं हुए हैं। 1992 में हुए हिंसाचार में और भी हिंदुओं को भगाया गया। विचित्र बात है कि यह हमारा देश है। तुम तुम्हारे देश को जाओ कहकर हमें भगाने वाले ही आज वहाँ से भाग कर भारत आ रहे हैं। उनको आश्रय दें तो आगे एक दिन वे यहाँ के लोगो को भगाने से भी पीछे नहीं हटेंगे।

16

कन्नड़ सीख कर शिक्षक बना

पूर्वी पाकिस्तान के कुल्मा जिले के मनोहर मंडल जन्मजात कन्नड़िगा के भाँति कन्नड़ बात करने वाले एक बंगाल के हिंदु बंधु हैं। सिंधनूर के रेफ्यूजी कैंप में कन्नड़ पाठशाला में 44 वर्शों से अपनी सेवा देने की कीर्ति है इनकी। भारत की ओर पलायन करते समय उनके अपने गाँव लता खमल बाड़ी के आस–पास के गाँवों को मुसलमानों ने आग लगा दी समाचार प्राप्त हुआ। कल इनके गाँव में आने वाले थे वे राक्षस। उस समय मैंने दसवीं पास किया था। पी.यू.सी में दाखिला लेने का बहुत मन था। परंतु यदि वे (मुसलमान) घर के अंदर आगये तो घर से हाथ धोना पड़े गा ऐसी चर्चा होने लगी थी। पाक सैनिक कहीं भी किसी के घर घुस जाते थे। हिंदु हैं बस पता चलने की देर है कतार में खड़ा कर गोलियों से भून देते थे। वहाँ गोलीबारी यहां आगजनी। यह समाचार आते ही रहते थे। इस स्थिति में गाँव में सुरक्षित रहना संभव ही नहीं था। जिंदा रहे तो भीख मांग कर भी जी सकते हैं यही सोच कर भारत की ओर पलायन का निर्णय लिया गया। परंतु वहाँ की जमीन घर आदि का क्या किया जाए? सवाल उठा। पिताजी को सब बेच देने का बिल्कुल भी मन

नहीं था। कुछ भी बेचने की जरूरत नहीं है, हाँ कुछ दिनों के लिए भारत जाकर लौट आएंगें थोड़े दिनों में सब ठीक हो जाएगा ऐसा पिताजी का खयाल था। हमारा यह सौभाग्य ही था कि अन्य घरों में घुसकर लूटपाट करने के भाँति मुसलमान हमारे घर में नहीं घुसे थे। और न ही कोई बुरा अनुभव हमें हुआ था। फिर भी जागरुकता और सुरक्षा की दृश्टी से हम रातों–रात नाव चढकर हम सभी परिवार वाले भारत आ गए। हम चार भाई पिताजी, माँ, सब भारत आ गये। खड़े होने के लिए पाँव के नीचे जमीन नहीं और जो जमीन है वह अपनी नहीं। कहाँ जाए पता नहीं। किसी पर भी विश्वास करने में बहुत डर है। ऐसी स्थिति में रामकृशण मिशन के सदस्यों ने हमारी बहुत सहायता की। उन लोगों ने हमें ''दाल चावल'' खिलाकर हमारी पहली भूख को षांत किया। आखिर में सभी की भाँति हमें भी माना कैंप भेजा गया। वहाँ हमारे ही गाँव के हमारे ही जिले के हजारों लोग थे। हर एक की एक अलग कहानी। सभी का जीवन असुरक्षित। भारत में ही रहें कि वापस जाएं पता नहीं। हम सभी 1970 में आए थे। एक साल तक माना कैंप में ही रहे। परिस्थितियाँ सुधरने के बजाए और बिगडती ही गई। 1971 के लगभग हिंसाचार और बढ़ गया। रेडियो से लगातार समाचार आ रहे थे। निकट भविश्य में वापस लौटना संभव ही नहीं है मन की आवाज सुनाई देने लगी थी। भारत सरकार हमें जमीन और घर देगी सुनकर बहुत संतोश हुआ। लेकिन हमारी मातृ भूमि को कभी भी लौटना नहीं होगा क्या? हमारा घर वहाँ है जिसे हमने खो दिया है। यह एक भाव कचोटता ही रहता था।

माना कैंप में ही हमें यह जानकारी मिली कि सिंधनूर में हमें पाँच एकड़ जमीन और घर बनाने के लिए 80 बटा 40 के बराबर भूमि दी जाएगी। परंतु पिताजी और बड़े भाई आने के लिए कतई तैयार नहीं हुए। हम वापस ही जायेंगे कहकर
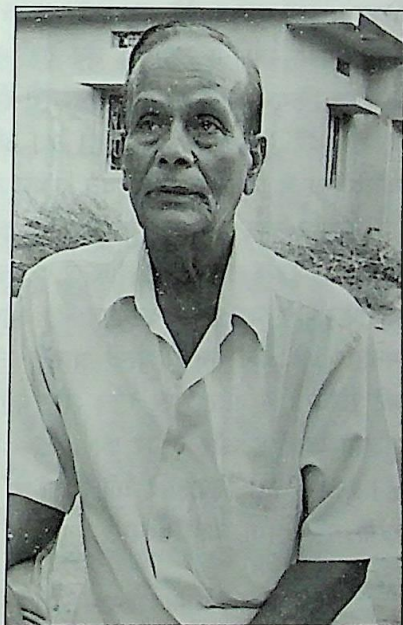
वापस जाने के लिए नाव चढ़ ही गए। आज भी भाई साहब वहीं हैं। पिताजी अब नहीं रहे।

यहाँ सिंधनूर आने पर हमें कन्नड़ भाशा नहीं आती थी। वहाँ के लोगों को बंगाली नहीं आती थी। हिंदी भी बहुत कम आती थी। प्रारंभिक कुछ दिनों तक तो सांकेतिक भाशा से काम चलाते रहे। हमारा सौभग्य ही है कि कन्नड़ भाशी सहृदय वाले थे। हमें अपने घर ले जाकर भले ही भोजन न खिलाएं पर हमारे हिस्से की जिंदगी को छीनते तो नहीं थे। पहले –पहले उन्हें भी हमसे भय होता ही था। हमें दूर रखते, हमसे दूर रहते थे। पर बाद में जब भी जरूरत थी साथ खड़े हुए। उसमें भी संघ के लोग कदम–कदम पर जीवन की नींव को दृढ़ बनाने में सहायक बने। देखते– देखते सिंधनूर हमारा अपना बन गया। हमारी तरह ही सौ से भी अधिक परिवार वाले यहाँ आए थे।। भारत सरकार के द्वारा दसवीं पास लोगों के लिए शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम षुरु किया गया। मेरे सपनों को पहली बार पंख लगे। मैंने भी उसमें दाखिला लिया परंतु कन्नड़ भाशा का आना अनिवार्य था। मैंने बहुत मेहनत की और कन्नड़ भाशा की परीक्षा पास कर ली। आखिरकार मुझे शिक्षक की नौकरी मिल गई। 60 रूपए का वेतन मिलता था। जो जमीन दी गई थी उसमें धान की खेती करना प्रारंभ किया। उसी समय मेरे एक और भाई जमीन की आस में माना से सिंधनूरु आए। परंतु जब वे यहाँ थे तब वहाँ दण्डकारण्य में सरकार ने जमीन का आबंटन किया। उन्हें इसकी जानकारी ही नहीं मिली उस समय आज की भाँति दूरभाष की सुविधा भी नहीं थी न। और यहाँ भी जमीन नहीं मिली। आज कोलकत्ता में किसी तरह जीवन यापन कर रहे हैं, मास्टर जी कहते हैं।

मनोहर मंडल जी ने शिक्षक वृत्ति को बहुत ही कम वेतन से प्रारंभ किया। अंत के 8 साल उन्होंने हेड़ मास्टर के रूप में सेवा की। अभी उनकी बेटी होसूरु के किसी पाठशाला में कार्यरत है। और उनका बेटा बेंगलुरु में पढ़ रहा है। मनोहर जी और उनकी पत्नी आरती जी सिंधनूर में अपना घर बना कर चौन की जिंदगी में और सुख चौन और षांति जोड़ कर, बीते हुए कठिन दिनों से तुलना करते हैं और ईश्वर को लाख– लाख धन्यवाद देते हुए, दिन गुजार रहे हैं। बेटा– बेटी विवाहादि की चिंता है पर जीवन ही डूब जाने की चिंता अब कभी नहीं होगी, यह विश्वास है।

17

प्रारंभिक दिनों की व्याकुलता

सिंधनूर में आने के बाद प्रारंभिक दिन कैसे थे कोई पूछे तो किसी दूसरे ग्रह में आ गए हों ऐसा लगता था। कहते हैं वहाँ बसे लोग। किसी भी नए परिवर्तन को अपनाना कठिन ही होता है। उस पर भी जो कठिनाइयों का पहाड़ उठा कर लाए हों उन्हें और कठिन होता है। नई जगह, नई भाशा, नए लोग,नया वातावरण और नई जीवन पद्धति। सभी को समझना है तो सच में एक नए ग्रह में आ जाने का अनुभव ही होता है। उस पर भी स्थानीय लोग हमें बांग्लादेशी कहकर संदेह की निगाह से देखते थे उनका विश्वास जीतना, एक सवाल ही था। हम भी डर–डर के ही यहाँ आए थे तो हमें भी उनसे डर लगता था। यदि कभी वे हमारे घर के पास कुतुहल से भी हमें देखने आएं तो हम घर के अंदर आ कर ताला लगा लेते थे।

और तो और यदि हम कुछ खरीदने दुकान जाएं तो हमें भाशा भी नहीं आती थी। हाथ में पैसे रख हमें जो सामान चाहिए उसे संकेतों से दिखाते थे पर वे हमें " चलो–चलो कहकर भगा देते थे। पहले –पहले " चलो–चलो " किसी सामान का नाम है,

सोचते थे पर बाद में समझ में आया कि वे हमें भगा रहे हैं। हम नीची जाति के लोग हैं, इसलिए हम दुकान में रखे चावल और अन्य खाद्य सामाग्रियों को छू नहीं सकते थे। कैसा विपर्यास था कि हम अपने देश में मुसलमानों के लिए ऐसा सोचते थे। हम उनके घर जा कर आये तो स्नान करते थे। उनके द्वारा पानी पीकर रखे गिलास को हम नहीं छूते थे। वे जिस जगह बैठ कर गए हो उस स्थान को गोबर का पानी सींच कर लीपते थे। लेकिन आज हम ही उस स्थिति में पहुँच गए थे। यह एक तरह से षतरंज की उल्टी पड़ी चाल की भाँति जीवन हो गया था। बहुत ही दुःख होता था। इससे अच्छा तो वहीं रहकर उनका सामना ही कर लेते ऐसी भावना भी उठती थी।

यहाँ की सब्जियों के नाम भी नहीं मालूम थे। आनाजों के नाम नहीं ज्ञात थे। मक्के की रोटी का तो नाम ही नहीं सुना था। हमारी स्त्रियाँ मक्के की रोटी न बना पाने के कारण हम केवल आटा ही खाकर सोए भी हैं। आज भी रोटी बनाने में कठिनाइयाँ आती हैं। यहाँ आ कर 40 साल होने के बाद भी हम संपूर्ण रूप से यहाँ के नहीं हो पाए हैं। आखिर में हमें हमारे अपनों से ही तो खुशी मिलती है। इसी लिए हम अपने कैंप में हमारे रीति–रिवाज, हमारे खान–पान की पद्धित को ही अपनायें हुए हैं। पर ऐसा नहीं है कि हम स्थानीय लोगों से मेल–मिलाप नहीं रखते हैं। पहले जो संदेह की दृश्टी से देखते थे अब वे पारिवारिक मित्र बन गये हैं। नई पीढी के सभी को कन्नड़ भाशा आती है। हम जिस कठिनाई से गुजरे हैं उस कठिनाई का सामना हमारे बच्चों को न करना पड़े इस कारण बच्चों को कन्नड़ माध्यम पाठशाला में पढाया भी है। उनके लिए भी कन्नड़ पढना आसान नहीं था। कन्नड़ में 50 में से केवल 12 या 14 अंक ही मिलते थे। फिर भी जो भी हो हमारे बच्चों को यहीं रहना है तो कन्नड़ सीखनी ही होगी इस कारण पहली कक्षा से पाँचवीं कक्षा तक उनको कन्नड़ माध्यम पाठशाला में ही पढा रहे हैं।

सब से बड़ा आश्चर्य और हंसी की बात यह है कि हमने बंजारो को देखा ही नहीं था। पहली बार जब उन्हें देखा तो राक्षस ही होंगे सोचा था। उनकी वेश–भूशा देखकर हमें डर लगता था। एक बार भूख के कारण कुछ बंजारे हमारे खेत में आकर कांदा उखाड़ कर खा रहे थे। हम सब मिल कर उन्हें मार–मार कर मरने की स्थिति तक ले आए थे। जब हमें समझ आई कि वे भी हमारी तरह ही मनुश्य हैं तो हमें बहुत दुःख हुआ।

पहली बार जब हमने कन्नड़ भाषा सुनी तब हमें वह गुलुगुलु जैसी ही सुनाई दी थी। फिर जब अक्षरों को देखा तब जलेबी की ही याद आई थी। आज भी हमारे कई रिश्तेदारों को, किसी पानी से भरे गिलास में केकड़े को छोड़ देने से आने वाली आवाज की तरह ही कन्नड़ भाषा को सुनने से लगता है, कहते हैं। आज कन्नड़ सीख कर बोलने, पढने – लिखने वाले बहुतेरे हैं। जिंदगी ने हमें खुशी देने में तो बहुत वर्श लगाएं, परंतु हमारी आने वाली अगली पीढ़ी को चौन से जिंदगी जीने का गुर भी सिखाया। अब हम केवल भारतीय ही नहीं कन्नड़िगा भी हैं, ऐसा बहुतों का कहना है।

18
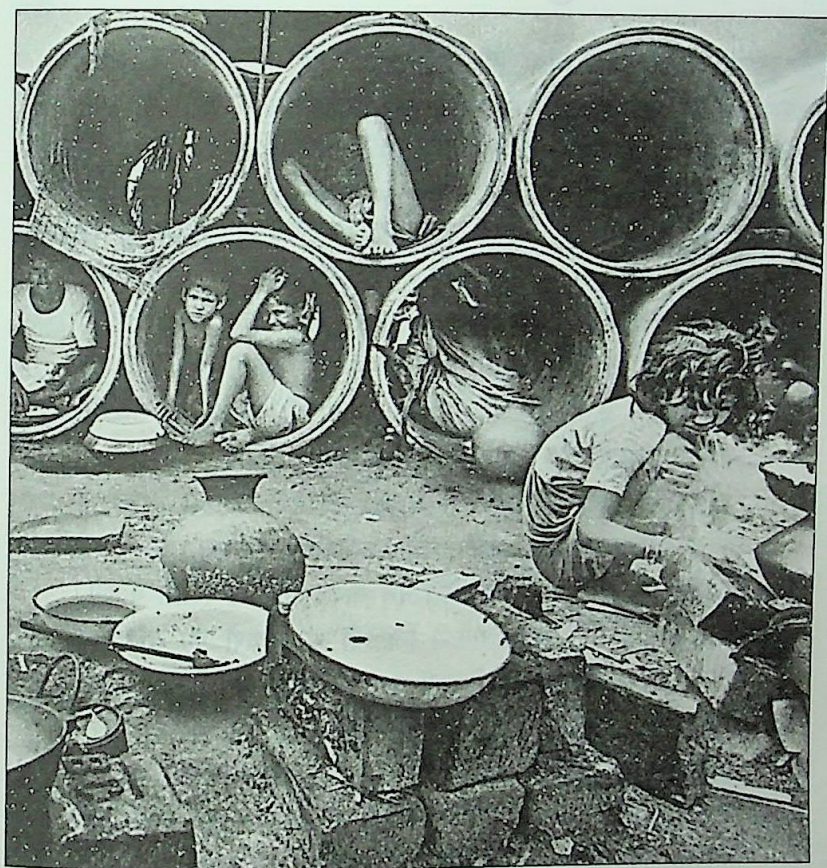
नई पीढी को इतिहास का ज्ञान होना चाहिए परंतु वे भयोत्पादक न बनें

निराश्रितों के कैंप में बच्चों को ट्युशन देने वाले रंजीत बक्शी का मासिक वेतन केवल सौ रूपए हैं। गणित और कन्नड़ सिखाते हैं। बांग्लादेश से भारत के रायचूर कैंप में आने के पश्चात स्वयं मेहनत कर कन्नड़ भाषा सीखी। हम जिस देश या प्रदेश में रहते हैं उस देश या प्रदेश की भाषा को सीखना अत्यावश्यक है ऐसा रंजीत बक्शी का अभिप्राय है।

रंजीत बक्शी बांग्लादेश में हिंदुओं पर हुए जिहादी आक्रमणों के चश्मदीद गवाह है। कुरान को अस्वीकारे तो जान गंवानी पड़ेगी इस भय के कारण निराश्रित बन भारत आए थे रंजीत बक्शी। फिर भी वे अपने ऊपर गुजरी जिहादी अत्याचारों को बच्चों के कोमल दिल और दिमाग में नहीं भरते। तो क्या हमारी आने वाली पीढ़ी को इतिहास की जानकारी नहीं होनी चाहिए? यह प्रश्न पूछने पर – होनी ही चाहिए परंतु वह ज्ञान सहज रूप से उन्हें मिलना चाहिए। कोमल मन के बच्चों को हमारे अनुभव किए हुए बर्बरता की जानकारी देने से वे भयोत्पादक बन सकते हैं। हमारे इतिहास की जानकारी उन्हें सहज रूप से होनी चाहिए।

हम क्यों इस निराश्रित कैंप में हैं? हम क्यों घर में बंगाली बोलते हैं? हम में और स्थानीय लोगों में भिन्नता क्यों है? हमारे सारे रिश्तेदार देश के भिन्न–भिन्न स्थानों में क्यों रह रहे हैं? हमारे खून के रिश्तों में से कुछ लोग बांग्लादेश में बसे हैं कैसे और क्यों? ऐसे अनेक प्रश्न बच्चों के मन में सजह रूप से उठते हैं तब उन्हें हमारे ऊपर हुए अत्याचारों की जानकारी देनी चाहिए। बुद्धि के बढने से पहले ही उन्हें यदि यह सब पता चलें तो उनके मन में भी क्रूरता पनपने लगती है। मुसलमानों के द्वारा हम पर हुए अत्याचारों की बात झूठ नहीं है। हमारी स्त्रियों पर अत्याचार कर उन्हें मार डालने की खबर भी झूठ नहीं है। हमरी सारी संपत्ति को हडप कर हमें खदेडने का समाचार भी झूठ नहीं है। फिर भी हमें हमारे बच्चों को जागरूक प्रजा बनाना है भयोत्पादक नहीं।

सामन्यतया हिंदु लोग किसी से भी द्वेश नहीं करते हैं ये उनका स्वभाव नहीं है। उसी तरह से हम अपने बच्चों को भी समझा कर बड़ा कर रहे हैं। इस्लाम समाज में कोमल बच्चों के दिमाग में अन्य मतों और धर्मों के विशय में द्वेश की भावना भर कर उन्हें भयोत्पादक बना रहा है ये स्पश्ट दीख रहा है। हमारे बच्चे उन जैसे नहीं बनने चाहिए ऐसा कहते हुए रंजीत बक्शी लँबी साँस भरते हैं।

19

इंदिरा गाँधी जी को अम्मा कहने वाले दलितों के विरुद्ध कांग्रेस की तलवार

1970 के लगभग भारत में प्रवेश करने वाले बांग्लादेशी हिंदुओं को स्थापित कर उन्हें नागरिकता प्रदान करने का निश्चय इंदिरा गाँधी जी ने लिया। उन्हें "अम्मा" कहकर बुलाते थे ये लोग। इंदिरा गाँधी जी की हत्या के पश्चात निराश्रितों के शिविर में उनका श्राद्ध कर श्रद्धांजली दी गई। परंतु आज यही कांग्रेस पक्ष नागरिकता संशोधन अधिनियम के विरुद्ध खड़ा है। यह बांग्ला निराश्रितों के लिए आश्चर्यजनक बात है। केवल अधि ाकार के लिए देश की सुरक्षा के विशय में कांग्रेस ने यह कदम उठाया होगा ऐसा अनुमान लगा रहे हैं वे लोग।

आधुनिक कांग्रेस के विश्वास पात्र मिशिनरीज भी बांग्ला हिंदुओ को अपने में मिला ने को आतुर हैं। सिंधनूर में कुल पाँच पुनर्वासित केंद्र में से चार हिंदुओ का है तो पाँचवा मयन्मार से आए तमिल भाशियों का है। इस तमिल भाशियों के केंद्र में कोई भी हिंदु नहीं रहा है। सभी धर्म परिवर्तन कर ईसाई बन गए हैं। तमिल कैंप में एक चर्च भी है। चर्च बनने के पश्चात ही धर्म परिवर्तन होने लगा। चर्च के पादरी आरोग्य स्वामी ने बांग्ला हिंदुओं से भी धर्मपरिवर्तन करवाने का विफल प्रयास किया। हिंदु

कैंप में जाने वाले जल की आपूर्ति को रोकने जैसा नीच कार्य भी उन्होंने किया। लेकिन हिंदुओं की वैचारिक जागरुकता ने क्रिश्यानिटि को बाहर ही रखा। चर्च के द्वारा उत्पन्न हो रही समस्यओं में स्थानीय पुलिस ने एक तरफा ही कार्य किया है यही वहाँ के हिंदुओं का दर्द है।

इसी प्रकार कुछेक स्थानीय मुस्लिम युवक बाइक में कैंप के आस–पास घूमते और समूह में खड़े होकर बात करते दिखाई दिए हैं। सिंधनूर से बहुत बाहर और दूर रहने वाले कैंप में क्यों आते हैं? यही एक प्रश्न है। ऐसी घटनाएं होने पर बांग्ला हिंदु युवक उनको साहस के साथ बाहर खदेड़ रहे हैं।
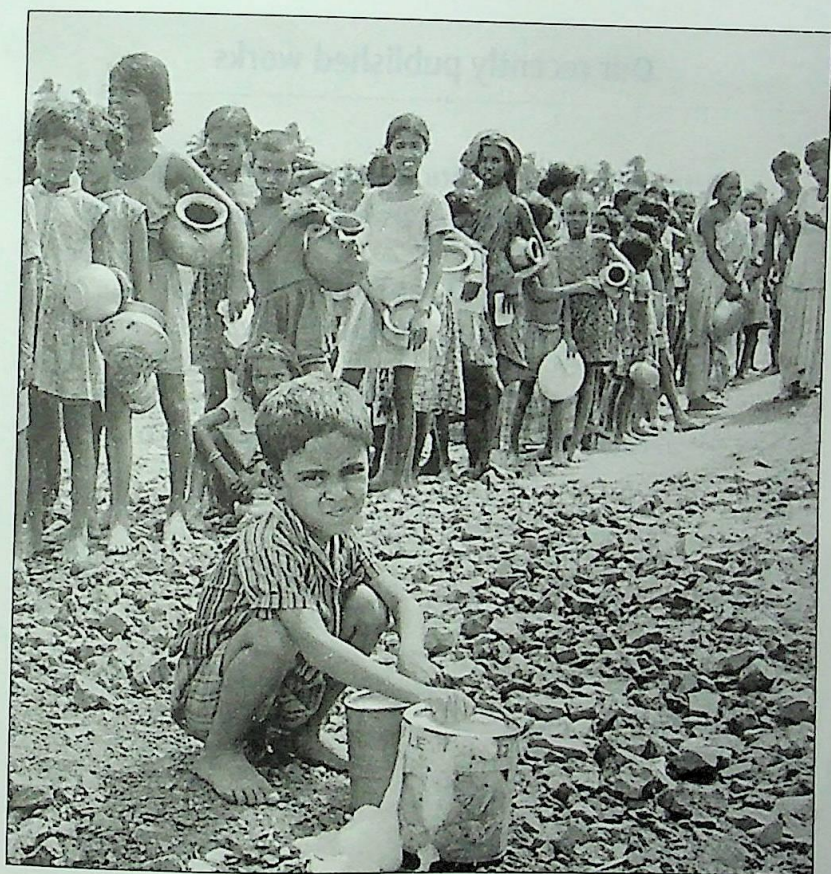
Our recently published works

❖ **Utta Batteyalli Horatu Bandavaru (Kannada)**
(Stories of Jihad on Bangla Hindus and their migration)

❖ **The Genocide That Was Never Told**
(Stories of Jihad on Bangla Hindus and their migration)

❖ **Vihitavidya (Kannada)**
((Thoughts on Indian Education System)
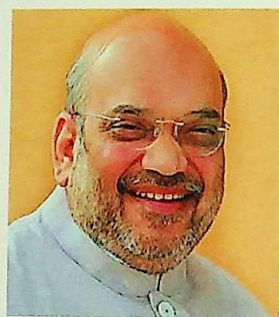
1947 में यदि भारत का विभाजन नहीं होता तो आज नागरिकता संशोधन अधिनियम की आवश्यकता ही नहीं होती। उसमें भी धर्म के आधार पर देश का विभाजन करना बहुत बड़ी गलती है।

भारत के मुसलमान राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, सभापति, चुनाव आयुक्त बने। परंतु पाक, बांग्ला, अफगानिस्तान में अल्पसंख्यक अपने धर्म, जीवन और महिलाओं के गौरव की सुरक्षा के लिए भारत में शरणार्थी बन कर आए। उनकी सुरक्षा हमारी जिम्मेदारी है।

–अमित शाह
गृह मंत्री, भारत सरकार

बांग्ला हिंदुओं पर हुई इस्लामिक क्रूरता की कहानियाँ

₹150

अयोध्या
गिरिनगर,
बेंगलूरु